गत दस-बारह वर्षोंसे हिन्दी-साहित्यमें बालक-बालिकाओं और स्त्रियों-के पढ़ने योग्य पुस्तकों और पत्रोंका प्रकाशन बड़े धड़ल्लेसे हो रहा है; किन्तु हमारा जहाँतक अनुमान है, इस क्षेत्रमें कलकत्तेकी प्रसिद्ध "आर० एल० बर्म्मन एण्ड कम्पनी" तथा बर्म्मन प्रेसके अध्यक्ष, श्रीयुक्त बाबू रामलालजी बर्म्माका काम सर्वापेक्षा नूतन और प्रशंसनीय है। कुछही दिनोंसे आपने 'रमणी-रत्नमाला' नामक एक पुस्तकमाला निकालनी आरम्भ की है, जिसमें आप भारतवर्षकी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्राचीन और अर्वाचीन सतियों तथा वीरांगनाओंके चरित्र-कुसुमोंका गुम्फन करना चाहते हैं। इस मालाकी 'सावित्री-सत्यवान्' और 'नल-दमयन्ती' नामक पुस्तकें सर्वसाधारण और समाचारपत्रों द्वारा मुक्तकण्ठसे प्रशंसित हुई हैं और अपने गुणोंसे हिन्दी-ग्रन्थ-साहित्यमें रत्न मानी गयी हैं। छपाईकी सफ़ाई, चित्रोंकी सुन्दरता और बहुलताके कारण ये पुस्तकें कोमल-मति बालकों, बालिकाओं और स्त्रियोंका दर्शनमात्रसे चित्ताकर्षण कर लेती हैं।

उक्त बाबू साहबकेही अनुरोधसे, उनकी इस स्त्री-पाठ्य ग्रन्थमालाके लिये हमने भगवती 'सीता'का यह चरित लिखा है। इसे लिखनेमें हमने गोस्वामी तुलसीदासके रामचरितमानस, महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत रामायण और महाकवि भवभूति-रचित उत्तररामचरितसे सहायता ली है; इसीसे यत्र-तत्र इन ग्रन्थोंके भावोंकी झलक इस पुस्तकमें दिखलाई देगी। इस ग्रन्थमें यद्यपि प्रसंगवश रामायणकी सारी कथा आ गयी है, परन्तु प्रधानतः वेही घटनाएँ ली गयी हैं, जिनसे भगवती सीताके लोकोत्तर और पुण्यमय चरित्रपर प्रकाश पड़ता है; अतएव यदि पाठक किसी-किसी घटनाका इसमें अभाव अनुभव करें तो उनसे हम अनुरोध करेंगे, कि वे हमारा लिखा 'श्रीरामचरित्र' नामक ग्रन्थ पढ़ें। उसमें रामायणकी कोई मुख्य घटना छूटने नहीं पायी है और रामायणके सभी प्रधान चरित्रोंको परिस्फुट करनेका प्रयास किया गया है। साथही यह वाल्मीकीय रामा-

यणका आधार लेकर लिखा गया है, अतएव आदिकविके अपूर्व भावों और अलौकिक प्रतिभाकी छटा भी उसके पढ़नेसे भली भाँति झलकती है। 'सीता' विशेषतया स्त्रियों और बालक-बालिकाओंके उपयोगके लिये लिखी गयी है और श्रीरामचरित्रको छोटे-बड़े तथा स्त्री-पुरुष सबके लिये समान उपयोगी बना देनेका प्रयत्न किया गया है। यह ग्रन्थ सीताकी अपेक्षा अधिक सजधजके साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

आर्य-साहित्यमें जितनी सती-साध्वी स्त्रियोंकी कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनके उज्ज्वल आदर्शोंपर अपना चरित्र-संगठन कर सहस्र-सहस्र आर्य-महिलाएँ अपना जीवन धन्य कर चुकी हैं, जिनके नाम लेनेसे आज भी प्रत्येक हिन्दू-का हृदय पवित्र भावोंसे भर जाता है, उनमें जगज्जननी-स्वरूपा जनक-नन्दिनी राम-प्रिया सीताका नाम बड़ाही गौरव-पूर्ण है। सभी सतियोंकी परीक्षा हुई है, सबने बड़े-बड़े कष्टोंके मध्यमें पड़कर अपनी धर्म-प्राणताका परिचय दे, अन्तमें सब दुःखोंके सिरपर पैर रख, सुखका मुख देखा है; परन्तु भगवती

और उच्च अभिलाषाओंमें लीन हो, आनन्द-समुद्रकी लोललहरीमें अपनी देह ढीले, सुख-पूर्वक बहती चली जाती हैं, उसी अवस्थामें एक दिन सवेरा होते-ही सीताने सुना, कि उनके प्राणोंके प्राण, जीवनके सर्वस्व, रामचन्द्र, चौदह वर्षोंके लिये वन जा रहे हैं। सारे राजसी सुखोंको लात मार, सीता उनके पीछे लगीं। कलतक जिसने पृथ्वीमें पैर नहीं रखे थे, वह कुश-काँटों और कंकड़ोंसे भरी राहोंमें जानेके लिये हँसते-हँसते तैयार हो गयी। सीता जंगलमें गयीं। पतिका चन्द्रमुख देख, उन्हें वनवासका क्लेश तनिक भी नहीं व्यापा। पर उन्हें दुःख देनेकी तो विधाताने शपथ कर ली थी—उससे उनका यह सुख भी न देखा गया। रावणने उन्हें अन्याय-पूर्वक हरकर लंकामें ला बिठाया और पति-वियोग कराया। वर्षोंके विरहके बाद, लंका-समरकी समाप्तिके पश्चात्, सीताने स्वामीको फिर पाया; पर शायद यह सुख न देखकर वे मर गयी होतीं, तो अधिक अच्छा होता; क्योंकि मिलतेही पतिने उनके पर-गृह-वासपर आक्षेप करते हुए उन्हें ग्रहण करना अस्वीकार किया। जले हुए हृदयपर मरहम न लगाकर नमक छिड़का गया! उस समय जलती चितामें कूद, अक्षतशरीरसे बाहर निकल, उन्होंने जगत्को दिखला दिया, कि सीताको कलंककी छाया भी नहीं छू सकती। इसके बाद वनवासके दिन पूरे कर सब लोग घर आये; पर कुछही दिन बीतते न बीतते राम-

चन्द्रने प्रजाके मुँहसे सीताके चरित्रपर अनुचित और अन्याय पूर्ण आक्रमण किये जाते देख, उन्हें घरसे निकाल दिया। उस समय वे पूर्ण-गर्भा थीं, पर प्रजा-वत्सल रामने प्रजाको प्रसन्न करनेके लिये प्राण-वल्लभाका त्याग दिया! उचित था, कि राम सीताके अपार प्रेमका स्मरण कर, सिंहासन छोड़ देते, पर प्रियाको न छोड़ते, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसके लिये सीताने उन्हे उलाहनातक नहीं दिया। वनमें पहुँचानेके लिये गये हुए अपने देवर लक्ष्मणके मुँहसे अपने पतिकी आज्ञा सुनकर वे बोलीं,—"महाराजने मुझे घरसे निकालकर प्रजाको सन्तुष्ट किया है, राजाका कर्त्तव्य पालन किया है। मैं भी अपने स्वामीके आदेशको सिर-आँखोंपर रख, हँसते हँसते सारे कष्ट सहनेको तैयार हूँ। दुःख कैसा?"

बारह वर्ष इसी तरह दुःखका जीवन बीतनेपर, जब मुनिवर वाल्मीकिकी चेष्टासे रामचन्द्र सीताको पुनः ग्रहण करनेको तैयार हुए, तब कुछ दुष्ट प्रजा-जनोंके मुँह बिचकानेसे रामचन्द्र फिर भी बिना परीक्षाके, उन्हें घरमें रखनेको राजी न हो सके। सीताकी आसमानमें पहुँची हुई आशा एकाएक धरतीपर गिरकर चूर-चूर हो गयी। यह धक्का सीताका नन्हासा रमणी-हृदय न सह सका। बार-बार दुःखके झकोरे खाते-खाते दुर्बल बना हुआ शरीर इस अपमानको सहन करनेमें असमर्थ हुआ और उन्होंने करुण-हृदयसे अपनी माता पृथ्वीसे प्रार्थना की कि माता! अब इस दुनियामें दुःख सहनेकी शक्ति नहीं रही—मुझे अपनी गोदमें ले ले। देखते ही-देखते वे पातालमें प्रवेश कर गयीं और उस अलौकिक आत्माका प्रभाव सारे दर्शकोंके ऊपर पड़ा। दुष्टोंको भी अपनी करनीका पश्चात्ताप होने लगा। राम, सर्वस्वान्त होनेपर, कहने लगे, कि देवि! मैं सिंहासन छोड़े देता हूँ, तुम मुझे न छोड़ो। परन्तु उस समय क्या हो सकता था? सब शेष हो चुका था!

इस तरह हम देखते हैं, कि सीताका जीवन, आरम्भसे अन्ततक घोर धर्म-परीक्षा और कष्ट-सहिष्णुताका जीवन था। राजाकी बेटी, राजाकी बहू, होकर भी उन्होंने जैसी सरलता, नम्रता, निरभिमानता और सहनशीलता दिखलायी है, वह प्रत्येक कुलाङ्गनाके लिये आदर्श है। पति-चरणोंमें निरन्तर तल्लीनता, एकाग्रता और तन्मयता दिखलानेमें सीताने कमाल कर दिया है। उन्होंने अपने शुभ्रचरित्र द्वारा यह बात भलीभाँति प्रमाणित कर दी है, कि नारीका जन्म पति-प्रेम और स्वामिहितचिन्तनकेही लिये है। पतिके सुख, सौभाग्य और सुयशकी रक्षा एवं वृद्धिके लिये नारीको किस तरह अपना अस्तित्वतक भूलकर मर मिटना

चाहिये, यह बात सीतासे बढ़कर और कौनसी रमणी दिखला सकी है? उनकासा अपूर्व धर्मानुराग, अटल पातिव्रत, अचल धैर्य और अमल चरित्र आर्य-साहित्यमें अतीव विरल है। क्या पञ्चवटीकी कुटियामें, क्या लङ्काके अशोकवनमें, क्या वाल्मीकिके आश्रममें, श्रीरामका प्रगाढ़ प्रेमही उनके जीवन-पथका ध्रुवतारा था। ऐसी एकाग्रता, ऐसी पतिगत चित्तताहीके कारण सीता हिन्दू-महिलाओंके लिये सर्वोत्तम आदर्श समझी जाती हैं। जिन सब गुणोंके वर्त्तमान होनेसे स्त्रीका जीवन पुण्यमय, उन्नत और अनुकरणीय हो जाता है, सीतामें उन सभीका समन्वय दिखलाई पड़ता है। इस ग्रन्थमें हमने अपनी अल्प-मतिके अनुसार उनके उन्हीं उत्तम गुणोंको परिस्फुट करनेका प्रयत्न किया है। इसमें हम कहाँतक सफल हुए हैं, यह हम स्वयं नहीं समझ सकते। हाँ, यदि इस पावन चरित्रके पाठसे हमारी बालिकाओं और महिलाओंको थोड़ा भी लाभ पहुँचा, तो हम अपना समस्त श्रम सफल समझेंगे।

स्त्रियों और बालिकाओंके लिये लिखी हुई पुस्तकोंकी भाषा सरल होनी चाहिये, यह विचारकर हमने रचनाके लालित्यकी रक्षा करते हुए यथा-साध्य सरल भाषा लिखनेकीही चेष्टा की है। इस ओर हमने कहाँतक सफलता पायी है यह पाठकों और सुयोग्य समालोचकोंके विचारनेकी बात है।

अन्तमें हम हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक और कवि, श्रीयुत पण्डित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदीको हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थका आद्योपान्त पाठकर हमारा उत्साह बढ़ाया और प्रसन्न होकर परिचय लिखनेकी कृपा की है।

कलकत्ता,
२७ जुलाई, १९२० ई०

विनीत—
ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा।

उपहार

विषय-सूची ।

चित्र-सूची ।

समर्पण

भारतधर्म्म-लक्ष्मी, खैरीगढ़-राज्येश्वरी,

'आर्य्यमहिला'-सम्पादिका

श्रीमती महारानी सुरथकुमारी देवी,

(ओ. बी. ई., क़ैसरे-हिन्द-स्वर्ण-पदक-प्राप्त)

महिमामयी देवी !

आप आर्य्यमहिलाओंको प्राचीन गौरवसे युक्त पदपर पुनः प्रतिष्ठित करनेका जो प्रयास कर रही हैं और आर्य्य-महिला-हितकारिणी-महापरिषद्, आर्य्यमहिला-महाविद्यालय, विधवाश्रम तथा "आर्य्यमहिला" पत्रिकाके द्वारा स्त्री-समाजको जो लाभ पहुँचा रही हैं, उसीसे मुग्ध होकर हम आर्य्यमहिलाओंकी अनादि-कालसे आदर्शभूता सती-शिरोमणि ——

"सीता"

देवीका यह शुभ्रचरित आपके करकमलोंमें सादर समर्पण करते हैं ।

ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा ।

वनवासिनी सीता।

इसी तरह सीताने अपने दुर्भाग्यके बारह बरस बिता दिये!

श्रीः

सीताका बाल्यकाल

१

बिहार-प्रान्तका उत्तरीय भाग आजकल तिर्हुतके नाम विख्यात है; परन्तु, आजसे बहुत पहले, अत्यन्त प्राचीन कालमें, यह "मिथिला" नामसे प्रसिद्ध था। आज भी यहाँके अनेक लोग मैथिल कहकर अपना परिचय देते हैं, और उनकी भाषा मैथिली भाषा कही जाती है। इस प्रकार इस प्रान्तने आजतक अपने पुराने नामकी रक्षा की है और नाम लेते-ही उस युगका इतिहास एक बार सभीके नेत्रोंके आगे चित्रसा घूम जाता है, जिस युगकी कथा लिखनेके लिये हमने इस समय लेखनी उठायी है।

त्रेता-युगमें मिथिला-देशमें 'जनक' नामके एक बड़े वीर, धीर, गम्भीर और प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनके सुन्दर और न्याय-पूर्ण शासनके प्रभावसे सारी प्रजा सुखी थी—कहीं भी किसी तरहका रोग-शोक नहीं था। सब ओर आनन्द, सुख और समृद्धिही दिखाई देती थी। राजा जनक केवल राजा-

सीताका बाल्यकाल

१

बिहार-प्रान्तका उत्तरीय भाग आजकल तिर्हुतके नामसे विख्यात है; परन्तु आजसे बहुत पहले, अत्यन्त प्राचीन कालमें, वह "मिथिला" नामसे प्रसिद्ध था। आज भी वहाँके अनेक लोग मैथिल कहकर अपना परिचय देते हैं, और उनकी भाषा मैथिली भाषा कही जाती है। इस प्रकार इस प्रान्तने आजतक अपने पुराने नामकी रक्षा की है और नाम लेते-ही उस युगका इतिहास एक बार सभीके नेत्रोंके आगे चित्रसा घूम जाता है, जिस युगकी कथा लिखनेके लिये हमने इस समय लेखनी उठायी है।

त्रेता-युगमें मिथिला-देशमें 'जनक' नामके एक बड़े वीर, धीर, गम्भीर और प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनके सुन्दर और न्याय-पूर्ण शासनके प्रभावसे सारी प्रजा सुखी थी—कहीं भी किसी तरहका रोग-शोक नहीं था। सब ओर आनन्द, सुख और समृद्धिही दिखाई देती थी। राजा जनक केवल राजा-

बिहार-प्रान्तका उत्तरीय भाग आजकल तिर्हुतके नामसे विख्यात है; परन्तु, आजसे बहुत पहले, अत्यन्त चीन कालमें, वह "मिथिला" नामसे प्रसिद्ध था। आज भी हाँके अनेक लोग मैथिल कहकर अपना परिचय देते हैं, और नकी भाषा मैथिली भाषा कही जाती है। इस प्रकार इस प्रान्तने आजतक अपने पुराने नामकी रक्षा की है और नाम लेते-ही उस युगका इतिहास एक बार सभीके नेत्रोंके आगे चित्रसा घूम जाता है, जिस युगकी कथा लिखनेके लिये हमने इस समय लेखनी उठायी है।

त्रेता-युगमें मिथिला-देशमें 'जनक' नामके एक बड़े वीर, धीर, गम्भीर और प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनके सुन्दर और न्याय-पूर्ण शासनके प्रभावसे सारी प्रजा सुखी थी—कहीं भी किसी तरहका रोग-शोक नहीं था। सब ओर आनन्द, सुख और समृद्धिही दिखाई देती थी। राजा जनक केवल राजा-

ही हाँ, ऐसा नहीं था। वे सब शास्त्रोंके ज्ञाता, धर्मके रहस्योंसे परिचित और लोक तथा परलोकके गूढ़तत्त्वोंके जाननेवाले थे वे राजा होकर भी महर्षि थे; गृहस्थ होकर भी पूरे वैरागी थे वे कर्त्तव्य समझकरही सारे काम करते थे और संसारके विषय-वासनाओंमें उनका मन तनिक भी लिप्त नहीं था। इसीसे सब लोग उन्हें "राजर्षि" कहते थे और बड़े बड़े ऋषि-मुनि तथा तथा पण्डितगण धार्मिक चर्चा करनेके लिये उनके पास आया करते थे। उनके गम्भीर ज्ञानको देख-देखकर बड़े-बड़े ज्ञानियोंके सिर नीचे झुक जाते थे और बड़े-बड़े विद्वान् उनकी अपार विद्वत्ताके आगे अपनी विद्वत्ताका घमण्ड भूल जाते थे। ब्राह्मणों-को भी उनकी विलक्षण विद्या-बुद्धिके कारण, उनसे उपदेश लेने और उनको अपना गुरु बनानेमें सङ्कोच नहीं मालूम होता था। अठारहों पुराणके कर्त्ता महर्षि कृष्ण-द्वैपायनके पुत्र, बाल-ब्रह्मचारी महर्षि शुकदेवने भी एक बार उनसे ज्ञानकी बातें सीखी थीं और उनके आगे शिष्यभावसे उपस्थित हुए थे! यदि सच पूछिये, तो उन दिनों जनकका सा विषयवासनासे दूर, संसारकी आसक्तिसे हीन, सब तरहसे योग्य राजा भारतमें दूसरा नहीं था।

किन्तु सब दिन बराबर नहीं जाते। ऐसे न्यायी और धर्मात्मा राजाके राज्यमें भी एक बार बड़ा भारी अकाल पड़ा! चारों ओर वृष्टिके अभावसे घोर हाहाकार मच गया! जीवगण

दुःखित हो आर्त्तनाद करने लगे! अन्नकी कमीसे अनेक जीव प्रतिदिन कालके गालमें जाने लगे!

प्रजाकी यह दुर्दशा देख, राजा बड़ेही दुःखित हुए। वे सोचने लगे,—"राजाकेही पापसे प्रजा कष्ट पाती है। जो राजा अन्यायी और अधर्म्मी होता है, उसीके राज्यमें दुःख, दारिद्र्य, रोग और शोककी वृद्धि होती है। परन्तु अपने जानते तो मैंने कभी किसी तरहका अन्याय नहीं किया, फिरी मेरी यह पुत्रवत् प्रजा इस प्रकार कष्ट क्यों पा रही है?" अनेक प्रकारसे चिन्ता करनेपर भी वे अपनी कोई त्रुटि न निकाल सके। तब यह सोचकर, कि "अपना दोष अपने आपको नहीं सूझता," उन्होंने अनेक ऋषि-मुनियों और वेद-शास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मण-पण्डितोंको बुलाकर परामर्श किया; परन्तु किसीने भी राजाकी ओरसे किसी तरहका अन्याय होता हुआ नहीं पाया। तब इसे ईश्वरकी माया और पूर्व-जन्मका कर्म्मफल समझकर, सबकी सम्मतिसे यही निश्चय हुआ, कि इस भयङ्कर अनावृष्टिके निवारणके लिये यज्ञ किया जाय।

ऐसा निश्चय होतेही यज्ञकी तैयारियाँ होने लगीं। देश-विदेश-के पण्डित, ब्राह्मण, साधु, संन्यासी और कर्म्मकाण्डीगण जनकपुरमें आ पहुँचे। बड़ी धूमधामसे वेद-विधिके अनुसार यज्ञ होने लगा। प्रजा बड़ी उत्कण्ठाके साथ यज्ञकी पूर्णाहुतिकी बाट जोहने लगी; क्योंकि सबका यह पूर्ण विश्वास था, कि इस यज्ञके फलसे अवश्यही उनके ऊपर भगवान्की कृपा होगी जल बरसेगा और उनके दुःख दूर होंगे।

(३)

यज्ञ समाप्त होनेपर, ब्राह्मणोंके कहनेसे, राजा जनक स्वयं सोनेका हल हाथमें लेकर खेत जोतनेको तैयार हुए। उस समय वे यह बात भूल गये, कि "मैं क्षत्रिय हूँ, राजा हूँ—कोई कृषक या हलवाहा नहीं, जो हल चलाऊँ।" प्रजाके कल्याणकी कामनासे, वे मानापमानकी बात भूल, खेत जोतनेको प्रस्तुत हो गये! ऐसा करते हुए उनके मनमें तनिक भी लज्जा या संकोच नहीं हुआ! खेतमें पहुँचकर ज्योंही राजाने हल चलाया, त्योंही आकाशमें मेघ छा गये, किसानोंके सूखते हुए प्राणोंमें सञ्जीवनी शक्ति भर गयी और उनकी नष्ट हुई आशा फिर हरी हो आयी।

यह शुभलक्षण देख, राजा वैदेही आनन्दित हुए और हल चलानेकी विधि पूरी कर घर लौटनाही चाहते थे, कि उन्होंने देखा, कि एक परम सुन्दरी बालिका उसी खेतमें पड़ी हुई हाथ-पैर पटक पटककर आप ही आप खेल रही है। ऐसी सुन्दर-सलोनी बालिकाको उस निर्जन प्रान्तमें पड़ी हुई देख, राजाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा! उनके हृदयमें विस्मयके साथ ही-साथ एक प्रकारकी ममता उत्पन्न हो गयी और वे उस बालिकाको गोदमें लिये बिना न रह सके। न जाने क्यों, उस बालिकाको गोदमें लेतेही राजाके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें पुलकावली छा गयी, उनके हृदयमें हर्षकी अपार तरंगें उठने लगीं। वे सोचने लगे,—"यह बालिका किसकी है? कौन ऐसा निठुर था, जो इसे यों खेतमें डाल गया? अथवा स्वयं लक्ष्मीही शरीर धारणकर बालिका रूपमें

सीता-जन्म ।

"राजा जनकने देखा, कि एक परम सुन्दरी बालिका खेतमें पड़ी खेल रही है।"

rman Press, Calcutta

(पृष्ठ—६)

[हमें] कृतार्थ करनेके लिये बैकुण्ठसे उतर आयी हैं ? अहा! [इ]सका रूप कैसा सुन्दर है, इसके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी गठन कैसी [म]नोहर है!" उसे देख-देखकर राजा आनन्दके मारे सचमुच "विदेह" हो गये।

वे बड़ी प्रसन्नताके साथ उस बालिकाको लिये हुए राजमहलमें [ग]ये और उसे अपनी रानीकी गोदमें देते हुए, उन्होंने उसके पाये [ज]ानेका विचित्र संवाद उन्हें सुना दिया। उस बालिकाके [क]मनीय रूपने रानीको राजाकी अपेक्षा अधिक आनन्दमें मग्न कर देया और वे बार-बार उसका मुख-चुम्बन करती हुई भी तृप्त [न] हुईं। उन्होंने कहा,—"महाराज, इस बालिकाको देखनेसेही, [न] जानें क्यों, मेरे हृदयमें मातृ-स्नेहकी नदी उमड़ आयी है—ऐसा [म]ालूम होता है, मानो यह मेरीही गर्भजात कन्या है। मैं इसका [ब]ड़े प्रेमसे पालन-पोषण करूँगी और इसे अपनीही लड़कीकी [भ]ाँति समझूँगी। आप समस्त राज्यमें इस बातका ढिंढोरा पेटवा दें, कि आजसे सब लोग इसे मेरीही लड़की मानें और [इ]सके जन्मकी बात कभी भूल कर भी कोई मुँहपर न लावें; [क्य]ोंकि आजके बाद मैं कभी किसीके मुँहसे यह सुनना नहीं [च]ाहती कि, यह मेरी लड़की नहीं, वरन् खेतमें पड़ी पायी हुई अज्ञात-कुल-शील बालिका है। यह कठोर वाणी सुननेपर मैं [प्]राण त्याग दूँगी।"

रानीकी इस अलौकिक ममताको देख, राजा मन-ही-मन बड़े [आ]नन्दित हुए और उन्होंने उनकी इच्छाके अनुसार घोषणा करवा दी। सब कोई उस लड़कीको राजाकीही सन्तान

सीता ज्यों-ज्यों बड़ी होने लगी, त्यों त्यों उसके रूप और गुणका माधुर्य्य भी बढ़ने लगा। धीरे-धीरे उसकी बाल्य तथा किशोर-अवस्थाएँ बीत गयीं और वह यौवनकी ओर अग्रसर होने लगी। अब राजाको उसके विवाहकी चिन्ता पड़ी। वे दिन-रात इसी उधेड़-बुनमें पड़े रहने लगे, कि यह सब गुणोंसे युक्त, सारी शोभाओंकी खान, कन्या-रत्न किस सुयोग्य पुरुष-रत्नको सौंपा जाय? उन्होंने एक-एक करके बहुतेरे राजा-राजकुमारोंकी बात सोची, परन्तु कोई भी उन्हें सीताके अनुरूप नहीं जँचा। उन्हें किसीमें एक, किसीमें दो और किसीमें अनेक दोष दिखाई देने लगते और वे आप-ही-आप झुँझला उठते थे; क्योंकि कोई भी तो ऐसा नहीं दिखलाई देता था, जिसमें दोषों या त्रुटियोंका सर्वथा अभाव हो।

तो फिर क्या किया जाय? बहुत कुछ सोच-समझकर अन्तमें राजाने यही निश्चय किया, कि "चाहे जो कुछ हो; परन्तु बिना पूरी परीक्षा किये, बिना सब तरहसे सीताके योग्य वर सिद्ध हुए, मैं किसी ऐसे-वैसेके हाथ अपनी कन्या न सौंपूँगा। मणिकी शोभा काञ्चनके ही साथ होती है—काचके साथ नहीं।

या परमात्मा मेरी अभिलाषा पूरी न करेगा? क्या पृथ्वीमें
ताके अनुरूप वर न मिलेगा?

उन दिनों कन्याके विवाहके लिये योग्य पात्रोंका अनु-
सन्धान कई तरहसे किया जाता था। कहीं तो माता-पिता
स्वयंही नाना स्थानोंमें घूम-फिरकर योग्य वर मिलतेही विवाह-
का ठीकठाक कर लेते और अन्तमें उसीके साथ अपनी कन्याका
विवाह कर देते थे। कहीं स्वयंवर रचा जाता और बड़े-बड़े राजा
तथा राजकुमार न्यौता देकर बुलवाये जाते थे। सबके सामने
कन्या, हाथमें जयमाल लिये हुए, स्वयंवर-सभामें आती और एक-
एक करके सब राजाओं और युवराजोंके गुणों और कीर्त्तियोंको
सुनकर, जिसे चाहती उसके गलेमें जयमाल डाल देती थी।
इसके सिवा कभी-कभी ऐसा भी देखनेमें आता था, कि
विवाहार्थी युवराजोंकी वीरताकी परीक्षा ली जाती और उस
परीक्षामें जो उत्तीर्ण होता, वही कन्याका स्वामी होता था।

राजा जनकने भी अपनी कन्याके लिये योग्य वर पानेक
यही तीसरा ढंग अच्छा समझा। बहुत दिनोंसे उनके घर
शिवजीका दिया हुआ एक बड़ा भारी धनुष रखा हुआ था
राजाने प्रतिज्ञा की, कि जो मनुष्य इस धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा
उसीके साथ मैं अपनी कन्याका विवाह कर दूँगा। यह विचा
स्थिर होतेही उन्होंने स्वयंवरके लिये मण्डप बनानेकी आज्ञा दे
और तिथिका निश्चय कर समस्त राजाओंके यहाँ निमन्त्रण भे
दिया। देखते-देखते चारों दिशाओंमें यह संवाद बिजलीक
भाँति फैल गया।

जिस समयकी कथा हम लिख रहे हैं, उस समय अयोध्या पुरीमें दशरथ नामके एक बड़े प्रतापी और चक्रवर्ती राजा राज्य करते थे। उनके चार बेटे थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। बुढ़ापेमें पुत्र पाकर राजा बड़ेही सुखी थे, क्योंकि उनके तीन पन निस्सन्तान अवस्थामेंही बीत गये थे और उन्होंने इसके कारण बहुत मानसिक क्लेश पाया था; परन्तु भगवान्की दया, ब्राह्मण ऋषियोंके आशीर्वाद और यज्ञानुष्ठानके फलसे अन्तमें उनकी मन स्कामना पूर्ण हुई और एककी कौन कहे, चार-चार पुत्र उनके आनन्दको बढ़ाने लगे! राजाके तीन रानियाँ थीं जिनके नाम क्रमशः कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा थे रामकौशल्याके, भरत कैकेयीके, तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्राके गर्भसे पैदा हुए थे। चारों लड़के रूपमें कामदेवके तरह सुन्दर और गुणमें साक्षात् देव-बालक मालूम होते थे अत्यन्त थोड़ी अवस्थामेंही उन्होंने क्षत्रियोंके लिये जो कुछ सीखना-पढ़ना आवश्यक है, वह सब सीख-पढ़ लिया था चारों ओर उन बालकोंकी बड़ाई सुन पड़ती थी। कोई उनके रूपका बखान करता, तो कोई शील, गुण और वीरताका कहनेका तात्पर्य यह, कि प्रत्येक मनुष्यकी जिह्वापर उनके प्रशंसाके गीत थे।*

---

* रामचन्द्रकी शिक्षाप्रद कथा विस्तारपूर्वक जाननेकी इच्छा हो तो हमा यहांसे "रामचरित्र" नामक सचित्र पुस्तक मंगाइये।

करेंगे? आज्ञा हो, तो मैं ही चलूँ और सब राक्षसोंको मार भगाऊँ!" पर मुनिने न माना और राजाकी सारी युक्तियोंक काट कर कहा,—"आपको राजकुमारको मेरे साथ अवश्य भेजन होगा। मेरा यह पूरा विश्वास है, कि अवस्थामें कम होनेप भी आपके पुत्रमें अलौकिक तेज है—उस तेजके आगे वे राक्षर कदापि ठहर न सकेंगे। आप यदि अनुचित पुत्र-स्नेहके कारण मेरा यह अनुरोध न मानेंगे; तो मैं आपको घोर शाप दिये विन न रहूँगा।"

मुनिको इस प्रकार क्रोध-मूर्त्ति धारण करते देख, राजा औ भी घबराये, अतएव इच्छा न होते हुए भी उन्होंने रामको मुनि हाथमें सौंप दिया। रामके छोटे भाइयोंमें लक्ष्मण उनके पर अनुयायी थे—वे एक क्षण भी उन्हें छोड़कर कहीं न रहते थे महर्षि और पिताकी आज्ञा ले, वे भी रामके साथ-ही-सा तपोवनको चले। कटिमें पीत पट पहने, हाथमें धनुर्बाण लिये राम और लक्ष्मण जिस समय मुनिके साथ पथमें जाने लगे, उस समय सुकुमारता और वीरताका वह सम्मिलन देख दर्शकों मनमें तरह-तरहके भाव उठने लगे।

रास्तेमें दो क्षत्रिय-कुमारोंके साथ मुनिको आश्रमकी ओ जाते देख, मारीचकी माता, 'ताड़का' नामक राक्षसीने समझा कि अवश्यही मुनिराज इन वीर-कुमारोंको राक्षसोंके मारनेवे लियेही लिवा लाये हैं। अतएव बड़े क्रोधमें आकर, उसने उ लोगोंपर आक्रमण किया। वह राक्षसी बड़ी वीर थी औ उसने लोगोंको बहुतही हैरान कर रखा था; परन्तु रामचन्द्र

एकही वाणमें उसका काम तमाम कर डाला। यह देख, मुनि बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा, कि मेरी जो धारणा थी, कि जिनसे मेरा काम बन जायगा, वह बिल्कुल ठीक थी—उसका परिचय भी मुझे अभीसे मिलने लगा।

आश्रममें पहुँचकर मुनिने राम-लक्ष्मणको बड़े आदरसे रखा और उनको तरह तरहके अस्त्र शस्त्र प्रदान किये। मुनिके दिये हुए कन्द, मूल और फलोंको दोनों भाइयोंने बड़े प्रेमसे खाया और गङ्गाका निर्मल जल पीकर बड़ेही सन्तुष्ट हुए।

दूसरे दिन प्रात काल होतेही मुनि नित्य-नैमित्तिक कर्म्मोंसे निवृत्त हो, यज्ञ भूमिमें आये और यज्ञकी क्रियाएँ करने लगे। राम और लक्ष्मण उनकी यज्ञ शालाकी चौकसी करने लगे। मुनिके आकर यज्ञ करने और ताड़काके मारे जानेका सवाद सुन, मारीच और सुवाहु, दल्के दल राक्षसोंको लिये हुए आ पहुँचे और तरह-तरहके उपद्रव मचाने लगे। उस समय दोनों भाइयोंने ऐसी वीरता दिखायी, कि उनके छक्के छूट गये और एक-एक करके सभी उनके बाणोंके प्रहारसे मारे गये। मुनिकी अभिलाषा पूर्ण हुई और उनका यज्ञ निर्विघ्न सम्पूर्ण हो गया।

इन दुष्ट और उपद्रवी राक्षसोंके मारे जानेसे केवल विश्वामित्रकोही प्रसन्नता न हुई, बल्कि, आस-पासके सभी ऋषि-मुनियोंको आनन्द हुआ और उनके झुंडके झुंड राम-लक्ष्मणको देखनेके लिये आने लगे। सबने हृदयसे उनको आशीर्वाद दिये और बार-बार आलिङ्गन करते हुए भी न अघाये। इस प्रकार मिलते मिलाते और तपोवनका आनन्द लेते हुए कई दिन बीत

गये। तब एक दिन रामने बड़े आदर और विनयके साथ मुनिः
घर लौट जानेकी आज्ञा माँगी।

राजा जनककी कन्या सीताके स्वयंवर और शिवजी
धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा देनेवाले वीरकेही साथ कन्याका विव
करनेकी उनकी प्रतिज्ञाकी बात उस समयतक सर्वत्र फैल ग
थी। तपोवनोंमें भी यह संवाद पहुँच गया था ; क्योंकि उन दि
स्वयंवर-सभाओंमें प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ऋषि-मुनि और ब्राह्मण-पण्डि
भी बुलवाये जाते थे। दोनों भाइयोंके विदा माँगतेही मुनिः
इस स्वयंवरकी बात याद हो आयी और उन्होंने जनकः
प्रतिज्ञाका वृत्तान्त सुनाकर उनसे कहा,—"तुम लोग भी :
साथ-साथ वहाँ चले चलो, तो बड़ी अच्छी बात हो। क्यों

आनन्दपूर्वक यात्रा पूरी कर राम-लक्ष्मण सहित राजर्षि [वि]श्वामित्र जनकपुरमें आ पहुँचे। नगर ऐसा सुन्दर बसा [हु]आ था, उसमें जगह-जगह ऐसे रमणीय उद्यान, वापी, कूप, [त]ड़ाग आदि बने हुए थे, कि दोनों भाई उनकी अपार शोभा [दे]ख-देखकर बड़े आनन्दित होने लगे। तालाबोंके सुन्दर, निर्मल [औ]र मोती जैसे स्वच्छ जलमें सुहावने हंसों और कमलके फूलों-[प]र मँड़राते हुए मतवाले भौरोंको देख, उन्हें परम सुख होने [ल]गा। हाट-बाटकी शोभा विलक्षण थी। बस्तीको देखकर [ऐ]सा मालूम होता था, मानों विश्व-कर्म्माने यहाँके सारे महल-[म]कान अपने हाथों बनाये हैं। रहन-सहन, शील-स्वभाव, आचार-[व्य]वहार और बातचीतसे भी वहाँके लोगोंमें ऐसी सभ्यता और [मि]लनसारी देखनेमें आयी, कि उनका हृदय गद्गद हो गया। [ब]ड़े-बड़े सेठोंसे लेकर छोटे-छोटे दूकानदारोंतककी दूकानोंमें [अ]पूर्व सुन्दरता और सजावट दिखाई देती थी। ऐसा ज्ञात [हो]ता था, मानों लक्ष्मीने इस नगरको अपने रहनेके लिये स्वयं [प]सन्द कर लिया है। बड़े-बड़े विशाल देव-मन्दिरोंकी शोभा-[ही] कुछ न्यारी थी और वहाँ इतनी भीड़-भाड़ और चहल-[प]हल दिखाई पड़ती थी, कि देखनेवालोंको सहजही मालूम हो [ज]ाता था, कि राजा जनक जैसे धर्म्मात्मा हैं, उनकी सारी [प्र]जा भी वैसीही धर्मके भावोंसे भरी है।

धीरे-धीरे वे लोग राजमहलके पास आ पहुँचे। उसका यह

आगे रख देते थे। उस दिन बड़े प्रेमसे स्नान, सन्ध्या और भोजनादि कर, उन लोगोंने विश्राम किया।

दूसरे दिन, प्रातःकालही लक्ष्मणने बड़े भाईसे कहा,—"मेरी बड़ी इच्छा है, कि इस नगरकी सैर अच्छी तरह कर आऊँ।

विशाल और भव्य रूप देखकर दोनों कुमारोंको अपना घर याद आ गया। दुर्गकी चहार-दीवारी बड़ी भारी थी। उसकी दीवारोंपर चतुर कारीगरोंने ऐसी कारीगरी की थी, कि देखते हुए आँखें तृप्त नहीं होती थीं; द्वारोंमें हीरे-जड़े किवाड़ लगे हुए थे; सोने-चाँदीके पत्रोंसे दीवारें मढ़ी हुई थीं, जिन्हें देखकर आँखोंमें चकाचौंध पैदा हो जाती थी। मुनिने दुर्ग-द्वारपर पहुँचकर अपने आनेका संवाद राजाके पास कहला भेजा।

सुनतेही राजा स्वयं दौड़े हुए आये और बड़े आदरके साथ मुनि और राम-लक्ष्मणको अपने साथ भीतर ले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सबको यथायोग्य आसनपर बैठाकर कुशल-प्रश्न पूछा। मुनिने राजाको अपने आनेका कारण बतलाया और अपने साथ आनेवाले राजकुमारोंका परिचय भी दिया। सुनकर जनकको बड़ी प्रसन्नता हुई और उनके ठहराने तथा स्वागत-सत्कारका प्रबन्ध कर उन्होंने बड़े आदरसे उन्हें विदा किया। राजकुमारोंके सुन्दर-सलोने रूपने राजाके मनको आकर्षित कर लिया और वे मन-ही-मन दशरथके भाग्यको सराहने लगे।

आगे रख देते थे। उस दिन बड़े प्रेमसे स्नान, सन्ध्या और भोजनादि कर उन लोगोंने विश्राम किया।

दूसरे दिन, प्रातःकालही लक्ष्मणने बड़े भाईसे कहा,—"मेरी बड़ी इच्छा है, कि इस नगरकी सैर अच्छी तरह कर आऊँ। मुझे यह नगर ऐसा कुछ सुहावना लगता है, कि लाख चाहता हूँ, पर यह इच्छा दबाये नहीं दबती। किन्तु मैं अकेला नहीं जा सकता, आप भी कृपाकर साथ चलें।" यह सुन रामचन्द्रने मुनिसे आज्ञा माँगी और मुनिने भी उन्हें प्रसन्नचित्तसे नगर देख आनेकी आज्ञा दे दी।

जिस समय दोनों भाई नगरकी परिक्रमा करने लगे, उस समय जनकपुरके लोगोंको उनके दर्शन कर बड़ा आनन्द हुआ। उनका रूप ऐसा लुभावना था, चाल-ढाल ऐसी मनोहर थी, बातें ऐसी प्यारी-प्यारी थीं, कि बालक, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी छेड़-छेड़कर उनसे बातें करने और मन-ही-मन सुखी होने लगे। वह पीतवसन, वह माथेपर चन्दनकी खौर, वह सिंहकेसे ऊँचे-ऊँचे कन्धे, वह बड़ी-बड़ी बाँहें, वह बाँकी भौंहें, हृदयपर झूलती हुई वह मोतियोंकी मालाएँ, वह कमलकेसे नेत्र, चन्द्रमाकेसे मुख देखतेही सब-के-सब मोहित और विस्मित होने लगे। एक दूसरेसे उनकी बड़ाई सुन, दल-के-दल लोग आकर उन्हें देखने लगे। मानों नगरवासियोंके दरिद्री नेत्रोंको शोभा और सौन्दर्य-दर्शनकी भिक्षा देनेहीके लिये उन कोटि-कोटि कामको लज्जित करनेवाले कुमारोंका आना हुआ हो!

घरोंके झरोखोंपर बैठी हुई स्त्रियाँ उनका वह सुभग वेश देख,

विशाल और भव्य रूप देखकर दोनों कुमारोंको अपना घर याद आ गया। दुर्गकी चहार-दीवारी बड़ी भारी थी। उसकी दीवारोंपर चतुर कारीगरोंने ऐसी कारीगरी की थी, कि देखते हुए आँखें तृप्त नहीं होती थीं; द्वारोंमें हीरे-जड़े किवाड़ लगे हुए थे; सोने-चाँदीके पत्रोंसे दीवारें मढ़ी हुई थीं, जिन्हें देखकर आँखोंमें चकाचौंध पैदा हो जाती थी। मुनिने दुर्ग-द्वारपर पहुँचकर अपने आनेका संवाद राजाके पास कहला भेजा।

सुनतेही राजा स्वयं दौड़े हुए आये और बड़े आदरके साथ मुनि और राम-लक्ष्मणको अपने साथ भीतर ले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सबको यथायोग्य आसनपर बैठाकर कुशल-प्रश्न पूछा। मुनिने राजाको अपने आनेका कारण बतलाया और अपने साथ आनेवाले राजकुमारोंका परिचय भी दिया। सुनकर जनकको बड़ी प्रसन्नता हुई और उनके ठहराने तथा स्वागत-सत्कारका प्रबन्ध कर उन्होंने बड़े आदरसे उन्हें विदा किया। राजकुमारोंके सुन्दर-सलोने रूपने राजाके मनको आकर्षित कर लिया और वे मन-ही-मन दशरथके भाग्यको सराहने लगे।

राजा जनकने जहाँ राम, लक्ष्मण और विश्वामित्रको ठहराया था, वह मकान बड़ाही रमणीय, सुन्दर और सजीला था। वहाँ उनके लिये सब तरहकी सुविधाएँ कर दी गयी थीं। वे जब जो कुछ चाहते, राजाके नौकर उसी समय लाकर उनके

आगे रख देते थे। उस दिन बड़े प्रेमसे स्नान, सन्ध्या और भोजनादि कर उन लोगोंने विश्राम किया।

दूसरे दिन, प्रातःकालही लक्ष्मणने बड़े भाईसे कहा,—"मेरी बड़ी इच्छा है, कि इस नगरकी सैर अच्छी तरह कर आऊँ। मुझे यह नगर ऐसा कुछ सुहावना लगता है, कि लाख चाहता हूँ, पर यह इच्छा दबाये नहीं दबती। किन्तु मैं अकेला नहीं जा सकता, आप भी कृपाकर साथ चलें।" यह सुन रामचन्द्रने मुनिसे आज्ञा माँगी और मुनिने भी उन्हें प्रसन्नचित्तसे नगर देख आनेकी आज्ञा दे दी।

जिस समय दोनों भाई नगरकी परिक्रमा करने लगे, उस समय जनकपुरके लोगोंको उनके दर्शन कर बड़ा आनन्द हुआ। उनका रूप ऐसा लुभावना था, चाल-ढाल ऐसी मनोहर थी, बातें ऐसी प्यारी-प्यारी थीं, कि बालक, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी छेड़-छेड़कर उनसे बातें करने और मन-ही-मन सुखी होने लगे। वह पीतवसन, वह माथेपर चन्दनकी खौर, वह सिंहकेसे ऊँचे-ऊँचे कन्धे, वह बड़ी-बड़ी बाँहें, वह बाँकी भौंहें, हृदयपर झूलती हुई वह मोतियोंकी मालाएँ, वह कमलकेसे नेत्र, चन्द्रमाकेसे मुख देखतेही सब-के-सब मोहित और विस्मित होने लगे। एक दूसरेसे उनकी बड़ाई सुन, दल-के-दल लोग आकर उन्हें देखने लगे। मानों नगरवासियोंके दरिद्री नेत्रोंको शोभा और सौन्दर्य-दर्शनकी भिक्षा देनेहीके लिये उन कोटि-कोटि कामको लज्जित करनेवाले कुमारोंका आना हुआ हो!

घरोंके झरोखोंपर बैठी हुई स्त्रियाँ उनका वह सुभग वेश देख,

आपसमें प्रसन्न होकर तरह-तरहके प्रीति-भरे वचन बोलती थीं। कोई कहती,—"सखी! यह गोरे और साँवले रङ्गकी जोड़ी कैसी सुन्दर है! धन्य हैं वे माता-पिता, जिनके ऐसे सुन्दर पुत्र हुए। ठीक मालूम होते हैं, जैसे देवताओंके बालक हों, नहीं तो ऐसा मनमोहन रूप मनुष्यमें कहाँसे हो सकता है?" कोई कहती,—"सखी! मैंने सुना है, कि ये अयोध्याके राजा दशरथके लड़के हैं। जिनका शरीर साँवले रङ्गका है, उनका नाम राम है और छोटे तथा गोरे रङ्गवालेका नाम लक्ष्मण है। देखो, कितनी थोड़ी अवस्था है, पर इसी अवस्थामें इन्होंने बड़े-बड़े राक्षसोंको मार डाला है। राक्षसोंको मार, मुनिके यज्ञकी रक्षा कर, ये अब यहाँ सीताका स्वयंवर देखने आये हैं।" यह सुन पहली स्त्री कहती,—"जैसी राजकुमारी सीता परम सुन्दरी है, यह साँवला सलोना भी वैसाही परम सुन्दर है। परमात्मा करे, यही सीताका वर हो। फिर तो उस सोनेकी अँगूठीमें यह साँवला नगीना ऐसा सजेगा, कि क्या बताऊँ!"

यह सुन दूसरी बोली,—"परन्तु राजाका प्रण जो बड़ा भारी है! वे तो उसीके साथ सीताको ब्याहेंगे, जो शिवजीके उस विशाल धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ायेगा। कहाँ यह कोमल कमनीय किशोर और कहाँ वह कठिन कोदण्ड*!"

उसकी इस अप्रिय आशङ्कासे झुँझलाकर पहलीने कहा,—"तू यह कैसी बात कहती है? देखनेमें छोटे होनेपर भी इनका प्रभाव बड़ा भारी है। अभी तूनेही तो कहा है, कि इन्होंने

* कोदण्ड—धनुष।

बड़े-बड़े राक्षस मार गिराये हैं। परमात्माने चाहा, तो देखना, मेरीही बात सच होकर रहेगी। विधना सदा अनमिल जोड़ी मिलाता है, परन्तु इस बार वह अपना यह कलङ्क धो देगा। यही श्यामसुन्दर सीताके स्वामी होंगे।"

इसी तरह जिसे देखो, वही इस युगल-जोड़ीकी चर्चा करता और अपने मनमें तरह-तरहकी कल्पनाएँ कर रहा था। पर एक बातमें सबका मन मिल जाता था। वह यह, कि सभीके मनमें यही बात बार-बार आती थी, कि राजा जनककी कन्याका विवाह इसी साँवले राजकुमारके साथ हो जाय, तो अच्छा हो!

इस प्रकार नगरकी सैर कर, आप आनन्दित हो और अपने दर्शनोंसे सबको आनन्दित कर, दोनों भाई अपने निवास-स्थानको लौट आये और सायङ्काल सन्ध्यावन्दनसे छुट्टी पा, भोजन कर ऋषिके पैर दाबने लगे। दोनों भाइयोंको नाना प्रकारके मनोरञ्जक इतिहास सुनाते-सुनाते राजर्षि निद्रा-देवीकी गोदमें विश्राम करने लगे। उनके सो जानेपर ये दोनों भाई भी शयन करने चले गये।

प्रातःकाल उठतेही दोनों भाइयोंने नित्यकर्म कर, मुनिसे पुष्प-वाटिकासे पूजाके लिये फूल ले आनेकी आज्ञा माँगी। मुनिने बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें फूल ले आनेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर वे दोनों भाई आनन्दित-मनसे फूल लाने चले। उनके निवास-भवनसे कुछही दूरपर राजा जनककी सबसे प्रसिद्ध और बड़ी फुलवारी थी। दोनों भाई उसीमें फूल लेनेके लिये आये।

उन्होंने वाटिकामें प्रवेश करतेही देखा—वसन्त-ऋतुके प्रभावसे वाटिकाके वृक्ष-वृक्षमें नवीन शोभा, नये फूल-पत्ते और नयी बहार छायी हुई है। रङ्ग-बिरङ्गे फूलों और पत्तोंवाले वृक्ष, मलय-पवनके सञ्चारसे झूम-झूमकर, मानों इनका स्वागत कर रहे हैं। तोता, मैना, कोयल, मोर, पपीहा आदि नाना प्रकारके पक्षी इस पेड़से उस पेड़पर जाते हुए तथा अपनी मनोहर बोलियोंसे कानोंमें अमृत टपकाते हुए, मानों इनकी स्तुति करने लगे। बागके बीचमें एक मनोहर तालाब बना हुआ था, जिसकी सङ्गमर्मरकी सीढ़ियोंमें तरह-तरहकी मूल्यवान् मणियाँ जड़ी हुई थीं। उसके निर्मल जलमें रङ्ग-बिरङ्गके कमल खिल रहे थे, जिनपर जलके पक्षी और रसिया भौंरे टूटे पड़ते थे। उस तालाबको देख और प्रकृतिके हाथों सिरजे हुए उस मनोहर उद्यानकी शोभाका अवलोकन कर, उन दोनों भाइयोंको अपार आनन्द हुआ और मालीसे पूछकर वे इच्छानुसार फूल तोड़ने लगे।

इसी समय, संयोगवश, राजा जनककी कन्या सीता भी

पूजा करते हुए छोड़, आप फुलवारीकी शोभा देखने चली गयी। इधर सबने बड़े भक्ति-भावसे पार्वतीकी पूजा की और जिसके मनमें जो अभिलाषा थी, उसे देवीके आगे निवेदनकर पृथ्वीमें माथा टेका। इसी समय वह पूर्वोक्त सखी बड़ी हँसती-इतराती हुई मन्दिरमें आयी। सबने देखा—हर्षसे उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें पुलकावली छा गयी है, नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ आये हैं और चेहरेसे हँसी फूटी पड़ती है। यह देख, सबने पूछा,—"क्यों? सखी! तू क्या देख आयी, जो इस प्रकार मारे हर्षके बावली हुई जाती है? तनिक हमलोगोंको भी तो सुना।"

यह सुन पहले तो उसने ऐसी आना-कानी की, जिससे कि सबका कौतूहल बढ़ गया और वे आग्रहके साथ बार-बार उससे पूछने लगीं; पर जब उसने देखा, कि अब ये कौतूहलके मारे पगली हुई जाती हैं, तब बोली,—"सखियो! क्या पूछती हो? बागमें दो राजकुमार फूल लेनेको आये हैं। उनकी अपार शोभा देख, मेरे तो नेत्र सफल हो गये। उनमें एकका रङ्ग साँवला, और दूसरेका गोरा है। दोनोंके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी गठन ऐसी मनोहर है, वे बातें ऐसी मीठी-मीठी करते हैं, कि क्या बताऊँ? सखियो! उस राजहंसके जोड़ेका क्या बखान करूँ? वह सौन्दर्य्य आँखोंसे देखनेकी ही वस्तु है—उसका वर्णन नहीं हो सकता। जिन आँखोंने उस शोभा और सौन्दर्य्यकी खानको देखा है, उनके जिह्वा नहीं और जिह्वाके आँखें नहीं—फिर कैसे उसका ठीक-ठीक वर्णन करूँ?"

उसकी ये आनन्द-दायक बातें सुन, सब सखियाँ आनन्दमें

मग्न हो गयीं और बड़े हर्षसे मन्दिरसे निकल, घर जानेकी तैयारी करने लगीं। रास्तेमें जाते-जाते सखियाँ उसी सलोने साँवरेके सुभगरूपका वर्णन करने लगीं, जिसे सुन-सुनकर सीताके मनमें अनायास प्रीति, आनन्द और उत्कण्ठाकी तरंगें उठने लगीं।

इसी समय कंकण-किंकिणी और नूपुरोंकी झनकार सुन, राम और लक्ष्मणने चकित होकर जो मन्दिरकी ओर देखा, तो सखियों-समेत सीता मन्दिरसे बाहर निकलती हुई दिखलाई पड़ी। सीताका वह सुन्दर रूप देख रामके नेत्र शीतल हो गये—वे एकटक चकोरकी तरह उस मुख-चन्द्रका अमृत पान करने लगे। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानों इस रूपकी रचना करनेमें चतुर चतुराननने अपनी समस्त निपुणता खर्च कर दी है। यह देख, उन्होंने लक्ष्मणसे कहा,—"भाई! देखो, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, कि यह वही राजा जनककी कन्या है, जिसके लिये स्वयंवर रचा जा रहा है। विधाताने क्याही सुन्दर सुडौल मूर्त्ति गढ़ी है! भाई! हम रघुवंशी हैं, हम कभी परायी बहू-बेटियोंकी ओर नहीं देखते; परन्तु मेरी दृष्टि आपही-आप इस बालिकापर जा पड़ी है और इसकी विलक्षण सुन्दरता देख, हटाये नहीं हटती।"

इधर दोनों भाइयोंमें इस तरह बातें हो रही थीं, उधर सखियोंने लताकी ओटसे सीताको राम और लक्ष्मणके दर्शन कराये। शरत्कालके मनोहर चन्द्रमाको देखकर जैसे चकोरी आनन्दमें मग्न हो जाती है, रामका रूप देख सीताकी भी वैसीही अवस्था हुई। सखियाँ भी वह रूप बार-बार निहारने और मन-

सीताका राम दर्शन।

सखियोंने लताकी आड़से सीताको राम और लक्ष्मणके दर्शन कराये

B rmun Pr C u ta

(पृष्ठ—२४)

ही-मन सराहने लगीं। घरसे आये हुए बहुत देर हो गयी थी, अतएव सब-की-सब इच्छा न होते हुए भी शीघ्रताके साथ महलकी ओर चलीं, पर वह श्याम-सुन्दर रूप सीताके हृदयपर अङ्कित हो गया और बार-बार नेत्रोंके आगे घूमने लगा। रामचन्द्र भी सीताकी वह सहज-सुकुमार मूर्त्ति हृदयमें धारण किये हुए लक्ष्मणके साथ डेरेपर आये और मुनिसे वाटिकामें सीताके देखनेका सारा हाल कह सुनाया। रामके मनमें कुछ छल, कपट और बुरी वासना तो थी नहीं, जो कहनेमें संकोच करते; क्योंकि जिसमें पाप और खुटाई होती है, वही बातें छिपाता है।

फूल पाकर मुनिने सन्ध्या-पूजा की और दोनों भाइयोंको आशीर्वाद दिया, कि तुम्हारे सब मनोरथ सफल हों। इसके बाद वे लोग भी सन्ध्यावन्दनमें लगे। आजका दिन भी बड़े आनन्दसे बीत गया।

सीताका स्वयंवर

(१)

आज सीताका स्वयंवर है—जनककी प्रतिज्ञाके अनुसार आज जो वीर हर-धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, सीता उसीके गलेमें जयमाल डाल देगी। स्वयंवर-सभा आज नाना देशोंसे आये हुए राजाओं, राजकुमारों, ब्राह्मणों, पण्डितों, ऋषियों और आत्मीय-स्वजनोंसे खचाखच भरी है। नगर-निवासी दर्शकोंकी भी भारी भीड़ लगी हुई है। सबके मनमें कौतूहल और उत्कण्ठा भरी है, कि देखें, आज किसे भगवान् बड़ाई देते हैं। विश्वामित्रके साथ-साथ दोनों भाई राम-लक्ष्मण भी रङ्ग-भूमिमें आ पहुँचे। उनके आतेही सभामें जितने आदमी बैठे हुए थे, सबकी दृष्टि एकाएक उनकी ओर खिंच गयी। देखतेही लोगोंके मनमें नाना प्रकारके भाव उदय होने लगे।

राजा जनकने उनके आतेही बड़े प्रेमसे उनका स्वागत किया और एक ऊँचे मञ्चपर मुनिके साथ-ही-साथ बैठाते हुए मुनिके चरणोंमें शीश नवाया। विश्वामित्रने आशीर्वाद देते हुए कहा,—"राजन्! आपने बड़ी उत्तम सभा-रचना करवायी है। ऐसी सभा देवलोकमें भी है कि नहीं, इसमें सन्देह है।" यह सुन जनकने शिर झुकाकर मुनिके वचनोंका आदर किया।

इसके बाद राजाने उपयुक्त समय जान, सीताको बुलवाया। अङ्ग-प्रत्यङ्गमें मणि-मुक्ता-जड़े, मनोहर और बहुमूल्य गहने पहने, सुन्दर साड़ीसे शरीर ढके, जिस समय सीता रङ्ग-भूमिमें आयी, उस समय देखनेवालोंकी आँखे झँप गयीं। जो शोभा त्रैलोक्यमें दुर्लभ है, उसे देख भला किसकी सामर्थ्य थी, जो आँखें मिलाता? सीताकी सखियाँ चारों ओरसे उसे घेरे और मङ्गलके गीत गाती हुई यथा-स्थान जा खड़ी हुईं। रामका वह अलौकिक रूप और सीताकी वह अनुपम सुन्दरता देख, सब यही चाहने लगे, कि राजा अपना प्रण तोड़कर भी रामके साथ सीताका ब्याह कर दें, तो अच्छा हो! न जाने क्यों, सबके हृदयसे यही निकलता था, कि यह श्याम-सलोनाही सीताके योग्य वर है!

राजाकी आज्ञा पा, भाटोंने राजा और सब उपस्थित सज्जनोंको प्रणामकर, राजा जनकके पूर्व्वपुरुषोंकी कीर्त्ति बड़े अच्छे और मनोहर भावभरे शब्दोंमें सुनाते हुए, उनके प्रणकी बात सबको बतला दी। शिवजीका वह विशाल धनुष सभाके बीचमें रखा हुआ था। बहुतोंके तो उसे देखतेही होश उड़ गये और बहुतेरे पास जाकर भी साहस न कर सकनेके कारण देख-भालकर लौट आये। परन्तु कुछ ऐसे भी उत्साही निकले, जिन्होंने उसके हाथ लगाया; पर प्रत्यञ्चा चढ़ानी तो दूरकी बात है, वे उसे टससे मस भी न कर सके। इसी तरह एक-एक करके सभी हार गये—कोई माईका लाल प्रत्यञ्चा न चढ़ा सका।

परन्तु वीर लक्ष्मणके हृदयमें जनककी बातें तीरकी तरह चुभीं। उन्होंने बड़े क्रोधके साथ लाल-लाल आँखें किये रामचन्द्रसे कहा,—"भैया! अभी तक आप बैठे-बैठे सुनही रहे हैं? रघुवंशियोंके सामने कोई भी ऐसी बात नहीं कह सकता, कि पृथ्वी वीरोंसे शून्य हो गयी। आपके रहते हुए, आपके मुँहपर, राजा जनकने ऐसी अनुचित बात कह डाली—यह मुझसे सहा नहीं जाता। आपकी आज्ञा हो, तो यह पुराना, सड़ासा धनुष क्या वस्तु है—मैं सुमेरु-पर्व्वतको भी गेंदकी तरह उठा ले सकता हूँ। आपके प्रतापसे मैं कच्चे घड़ेकी तरह इस सारे ब्रह्माण्डको तोड़ दे सकता हूँ। इन्होंने समझ क्या रखा है? आप कहें, तो मैं इस धनुषको तृणकी तरह उठाकर फेंक दूँ! यदि ऐसा न करूँ, तो आजसे धनुष हाथमें लेनेका नाम भी न लूँ।"

लक्ष्मणकी ये क्रोध-भरी बातें सुन, शान्त-स्वभाव रामचन्द्रने उन्हें बैठने और स्थिर होनेका सङ्केत किया। तब समय अनुकूल जान, विश्वामित्रने कहा,—"अच्छा, भैया रामचन्द्र! तुम उठो और धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर, राजा जनकका दुःख दूर करो। मैं आशीर्व्वाद करता हूँ, तुम्हारा श्रम सफल होगा।"

मुनिकी आज्ञा पा, उनके चरणोंमें शीश नवा, रामचन्द्र धनुषकी ओर चले। उस समय एक बार सबके हृदय-समुद्रमें खलबली मच गयी। उस सूर्य्यके समान तपते हुए सूर्यवंशीय कुमारके उठतेही, सब राजा-राजकुमार ऐसे तेजहीन हो गये, जैसे सूर्यके उदय होतेही तारागण छिप जाते हैं। गजकी तरह मन्द-मन्द गतिसे चलते हुए राम धनुषके पास आये और मन-ही-

यह देख, राजा जनकको बड़ा दुःख हुआ। वे माथेपर हाथ देकर खेदके साथ बोले,—"भगवन्! यह क्या हुआ? क्या पृथ्वी वीरोंसे शून्य हो गयी? क्षत्रिय-सन्तानोंमें क्या कुछ भी बल-पराक्रम न रह गया? क्या ब्रह्माने सीताका विवाह होनाही नहीं लिखा है? भाइयो! अब आपलोग अपने-अपने घर जाइये। मेरी लड़की क्वाँरीही रहेगी—यह मैं अच्छी तरह समझ गया। जब मैं एक बार प्रण कर चुका, तब उसे तोड़ तो सकता नहीं, क्योंकि क्षत्रियका प्रण अटूट होता है और बिना प्रण पूरा हुए मैं कन्याका विवाह कर नहीं सकता। हा! यदि मैं जानता, कि पृथ्वीमें अब वीरता नहीं रही है, तो क्यों ऐसा कठिन प्रण कर संसारमें अपनी हँसी कराता? मैं तो अब कहींका न रहा। इधर प्रण है, उधर कन्या कुमारीही रहा चाहती है! नाथ! क्यों ऐसे सङ्कटमें डाला? मेरी बुद्धिपर ऐसा क्या पत्थर पड़ा था, जो मैंने ऐसी अनहोनी प्रतिज्ञा की?" यह कहते-कहते राजा ग्लानि और दुःखसे कातर हो गये, उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये।

३

राजाके इन करुणाभरे वचनोंको सुन, सभामें जितने लोग बैठे थे, सब सीताकी ओर देख-देखकर मन-ही-मन बड़े दुःखी हुए। सीताकी सखियाँ मारे खेदके अधीर हो गयीं, किन्तु सरला सीताके मनमें कुछ भी नहीं था, उसके चेहरेसे किसी तरहका भावान्तर प्रकट नहीं हुआ।

परन्तु वीर लक्ष्मणके हृदयमें जनककी बातें तीरकी तरह चुभीं। उन्होंने बड़े क्रोधके साथ लाल-लाल आँखें किये रामचन्द्रसे कहा,—"भैया! अभी तक आप बैठे-बैठे सुनही रहे हैं? रघुवंशियोंके सामने कोई भी ऐसी बात नहीं कह सकता, कि पृथ्वी वीरोंसे शून्य हो गयी। आपके रहते हुए, आपके मुँहपर, राजा जनकने ऐसी अनुचित बात कह डाली—यह मुझसे सहा नहीं जाता। आपकी आज्ञा हो, तो यह पुराना, सड़ासा धनुष क्या वस्तु है—मैं सुमेरु-पर्वतको भी गेंदकी तरह उठा ले सकता हूँ। आपके प्रतापसे मैं कच्चे घड़ेकी तरह इस सारे ब्रह्माण्डको तोड़ दे सकता हूँ। इन्होंने समझ क्या रखा है? आप कहें, तो मैं इस धनुषको तृणकी तरह उठाकर फेंक दूँ! यदि ऐसा न करूँ, तो आजसे धनुष हाथमें लेनेका नाम भी न लूँ।"

लक्ष्मणकी ये क्रोध-भरी बातें सुन, शान्त-स्वभाव रामचन्द्र ने उन्हें बैठने और स्थिर होनेका सङ्केत किया। तब समय अनुकूल जान, विश्वामित्रने कहा,—"अच्छा, भैया रामचन्द्र! तुम उठो और धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर, राजा जनकका दुःख दूर करो। मैं आशीर्व्वाद करता हूँ, तुम्हारा श्रम सफल होगा।"

मुनिकी आज्ञा पा, उनके चरणोंमें शीश नवा, रामचन्द्र धनुषकी ओर चले। उस समय एक बार सबके हृदय-समुद्रमें खलबली मच गयी। उस सूर्य्यके समान तपते हुए सूर्य्यवंशीय कुमारके उठतेही, सब राजा-राजकुमार ऐसे तेजहीन हो गये, जैसे सूर्यके उदय होतेही तारागण छिप जाते हैं। गजकी तरह मन्द-मन्द गतिसे चलते हुए राम धनुषके पास आये और मन-ही-

मन गुरु और माता-पिताको प्रणाम कर, बात की बातमें धनुष उठा लिया। जैसे बिजली देखते-देखते चमककर मेघोंमें लीन हो जाती है, वैसेही रामने कब धनुष उठाया और कब प्रत्यञ्चा चढ़ायी, यह किसीने नहीं देखा, परन्तु प्रत्यञ्चा चढ़ातेही धनुष जब चरमराकर दो टुकड़े होगया, तब सब लोग आश्चर्य्यसे चकित हो उधर देखने और उन फूलसे हाथोंकी वज्रसी शक्तिकी बार बार प्रशंसा करने लगे। चारों ओर आनन्द फैल गया! राजा जनक, उनकी रानी, सीता और उसकी सखियोंको तो ऐसा अपार हर्ष हुआ, मानों चातकको स्वातिका जल मिल गया। जितने राजा-राजकुमार सीताको पानेकी आशासे आये हुए थे, उनके मुँहका रंग फीका पड़ गया। वे ऐसे मालूम होने लगे, मानों चन्द्रमाके आगे क्षीण-ज्योतिके तारे। लक्ष्मणके हृदयमें सुखका जो समुद्र उमड़ पड़ा, उसका कौन वर्णन कर सकता है?

तब जनकके पुरोहित शतानन्दने राजकुमारी सीताको रामके गलेमें वर माल पहनानेकी आज्ञा दी। यह सुन सङ्कोच, प्रेम और लज्जासे हृदयको लबालब भरे हुए, सीता अपनी सखी-सहेलियोंके साथ रामके पास आयी। मारे सङ्कोचके उसके हाथ नहीं उठते थे, हृदय उमड़ रहा था, आँखें झपी जाती थीं। जब सखियोंने बार-बार माला पहनानेके लिये कहा, तब सुमुखी सीताने सकुचाते-सकुचाते रामके गलेमें माला डाल दी! आनन्दके बाजे बजने लगे, स्त्रियाँ मङ्गलके गीत गाने लगीं और सब लोग सीताके सौभाग्यकी सराहना करने लगे। सबके जय-वाद और आशीर्वाद लेती हुई सीता अपनी माताके पास चली आयी।

इधर दुष्टोंको दुष्टताकी सूझी। जो राजा लोग धनुषकी प्रत्यञ्चा न चढ़ा सकनेके कारण लज्जित और विफल-मनोरथ हुए थे, वे राजा जनकको व्यर्थ खरी-खोटी सुनाने और लड़ाईमें दोनों भाइयोंको परास्त कर सीताको छीन ले जानेके मनमोदक उड़ाने लगे। पर उनकी उछल-कूद थोड़ीही देरमें शान्त हो गयी। राजा जनकके धिक्कारने और लक्ष्मणजीके क्रोध-पूर्ण नेत्रोंको देखनेसे उनका सारा सङ्कल्प मनहीमें लीन हो गया। वे सिटपिटाकर बैठ गये।

इसी समय मुनिवर परशुराम बड़े क्रोधके साथ लाल-लाल आँखें किये, राजा जनकके सामने आये और गरजकर बोले,—"क्योंरे मूर्ख जनक! हमारे परम पूज्य इष्टदेव शिवका यह धनुष किसने तोड़ा? शिवका भक्त होकर भी तूने अपने-आप उनका पिनाक तुड़वा डाला—यह क्या तुझे उचित था? उस धनुष तोड़नेवालेको अभी बुला, नहीं तो मैं इसी क्षण अपने शापसे तेरा सर्वनाश कर डालूँगा।" यह कह मुनि क्रोधसे शरीर कँपाने और बार-बार अपनी खड़ाऊँ पृथ्वीपर पटकने लगे।

बनी बातको इस तरह बिगड़ते देख, सबके हृदयमें बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई। स्त्रियाँ तो भयके मारे विह्वल हो गयीं और उन्हें एक-एक क्षण कल्पके समान मालूम होने लगा।

इस प्रकार सबको चिन्तित और राजा जनकको मुनिके क्रोधके आगे चुप्पी साधे देख, रामचन्द्र आगे बढ़ आये और

हाथ जोड़कर कहने लगे,—"महाराज! आप राजाके ऊपर क्यों वृथा क्रोध करते हैं? आपके इसी सेवकने धनुष तोड़नेका अपराध किया है, कहिये—क्या आज्ञा है?"

रामके इन नम्रता-भरे वचनोंसे मुनिका क्रोध कम न हुआ, बल्कि और भी अधिक हो गया। वे बोले,—"सेवकका क्या यही काम है? जो शत्रुकासा आचरण करे, वह कभी सेवक नहीं हो सकता। शिवजीका यह धनुष जिसने तोड़ा है, वह यदि मेरा सगा भाई हो, तोभी मैं उसे क्षमा नहीं कर सकता। उसे मैं अपने परम शत्रु सहस्रबाहुकेही समान समझता हूँ। राजाओ! तुम लोग यहाँसे चले जाओ, मैं इसे अभी इसकी करनीका फल चखाये देता हूँ। तुम लोग यहाँ रहोगे, तो वृथा मेरे क्रोधमें पड़कर तुम भी भस्म हो जाओगे।"

परशुरामको इस तरह बढ़-बढ़कर बातें करते देख, लक्ष्मणसे न रहा गया। वे उनका निरादर करते हुए कहने लगे,—"महाराज! हमलोगोंने लड़कपनसे लेकर आजतक न जाने कितने धनुष तोड़ डाले, पर आप कभी भी उनकी खोज-पूछ करने नहीं आये। इस धनुषपरही आपकी ऐसी क्या ममता है, जो इसे टूटा देख, आप अपने आपेको भूले जा रहे हैं?"

यह सुन, परशुरामने बिगड़कर कहा,—"रे दुष्ट क्षत्रिय-बालक! तुझे मुँह सम्हालकर बोलना नहीं आता? यह धनुष भी क्या और धनुषोंकी तरह है? यह भगवान् शङ्करका पिनाक है, इसे कौन नहीं जानता? इसे तोड़कर तुम लोगोंने उनका जो अपमान किया है, उसका दण्ड दिये विना मैं कदापि नहीं मान सकता।"

लक्ष्मणने मुनिको चिढ़ानेके लिये कहा,—"विप्रजी! बहुत लाल-पीले न होइये। मेरी समझसे तो सब धनुष बराबर हैं, फिर इस सड़ेसे पुराने धनुषमें रखाही क्या था? मेरे भाईके हाथ लगातेही यह आपसे आप धागेकी तरह टूट गया, इसमें उनका क्या अपराध है? उन्होंने इसे नया समझा था, यदि ऐसा सड़ियल जानते तो कभी छूते भी नहीं।"

परशुरामका क्रोध अब सीमा पार कर गया। उन्होंने हाथके फरसेको तानकर कहा,—"रे दुष्ट छोकरे! तेरी बाल-अवस्था देख दया आती है, नहीं तो इसी फरसेसे तेरे शिरके दो टुकड़े कर देता। नहीं जानता, कि मैं क्षत्रिय-वंशका पुराना वैरी हूं? क्यों माता-पिताको पुत्र-शोकका दुःख देनेको तैयार हुआ है?"

लक्ष्मण बोले,—"महाराज! आप ब्राह्मण हैं, लड़ाई-भिड़ाई आपका काम नहीं। वे क्षत्रिय, जिनके आप वैरी बनते हैं, कोई ऐसेही-वैसे रहे होंगे। अभी आपने रघुवंशियोंका हाल नहीं जाना है। ऐसे-ऐसे धनुष-बाण और फरसेको हम समझते-ही क्या हैं? आप ब्राह्मण हैं, इसीसे जो कुछ कहें, सब सुन लूँगा, सह लूँगा; क्योंकि हमारे कुलकी यह रीति है, कि देवता, ब्राह्मण, गो और ईश्वर-भक्तोंपर हाथ नहीं उठाते। कारण, यदि ये अपने हाथों हारें, तोभी पाप है और मारे जायँ तोभी पाप है। आपकी तो बातेंही वज्र हैं, यह हथियार तो आप व्यर्थही बाँधे चलते हैं। यदि कुछ अनुचित कहा हो, तो क्षमा कीजियेगा; पर मैंने तो आजतक ब्राह्मणोंको शाप देतेही सुना है, अस्त्र चलाते नहीं देखा—इसीसे ऐसा कहा है।"

यह सुन परशुरामका क्रोध सौगुना अधिक हो गया और वे कुछ अनर्थ करनेहीको थे, कि रामने संकेत कर लक्ष्मणको चुप करा दिया और आप बड़ी विनयके साथ हाथ जोड़कर मुनिसे कहने लगे,—"द्विजदेव! आप क्यों वृथा इस बालकके मुँह लग रहे हैं? इसके तो अभी दूधके दाँत भी नहीं टूटे, भला इसपर आपको क्रोध करना चाहिये? यह आपका प्रभाव नहीं जानता, इसीसे इतना बक गया। पर आप तो सर्वदर्शी हैं, बूढ़े हैं, परम ज्ञानी हैं, आपकी ऐसी चञ्चलता उचित नहीं। अपनी स्वाभाविक चपलताके कारण बालक यदि कोई अपराध भी कर बैठते हैं, तो बड़े-बूढ़े उनपर क्रोध नहीं करते। आप धीर, गम्भीर, शील निधान हैं, इसे बालक जान क्षमा कीजिये।"

रामकी इन विनय-भरी बातोंसे मुनि कुछ ठण्डे हुए, पर लक्ष्मणको धीरे-धीरे मुस्कराते देख उनका मन फिर चञ्चल हो उठा और वे कहने लगे,—"देखो, तुम्हारा यह भाई तुम सरीखा सुशील नहीं—बड़ा कुटिल, नीच और परले सिरेका पापी है। यह नहीं जानता, कि मैं साक्षात् यमकी तरह हूँ। इसका शरीर गोरा, पर मन काला है। तुम कहते हो, कि अभी इसके दूधके दाँत भी नहीं टूटे, परन्तु यथार्थमें यह दुधमुँहा नहीं, बड़ा विष-मुँहा है। देखनेमें इतना सुन्दर, पर मनका कैसा कुटिल है! मानों सोनेके घड़ेमें विष घोला हुआ शरबत हो।"

इसपर लक्ष्मणजीने और दो-एक ताने-तुर्रे छोड़े, जिन्हें सुन मुनिका मुँह मारे क्रोधके अँगारेकी तरह लाल हो आया रामचन्द्र बार-बार विनय-वाक्योंसे उन्हें प्रबोध देने लगे, प

शुराम किसी प्रकार सन्तुष्ट होते न दिखाई दिये। उन्होंने कहा,—"तुम दोनों भाई सिद्ध-साधक हो। वह कड़वे वचन बोलता है और तुम ऊपरसे शान्तिभरे वचनोंके छींटे डालते हो। तुम्हारी-उसकी एकमति न होती, तो वह क्योंकर ऐसी बातें कहता? देखो, मुझे कोरा ब्राह्मणही न जानना, मेरा क्रोध साक्षात् अग्नि है और इसमें मैं इक्कीस बार क्षत्रिय-सन्तानोंकी आहुति दे चुका हूँ। अबके और सही। मेरा इसमें क्या बनता-बिगड़ता है? तुम अपना भला-बुरा देख लो।"

यह सुन रामचन्द्रने कहा,—"भगवन्! आप ब्राह्मण हैं, क्षत्रियोंके सदैव पूज्य हैं। आपकी-हमारी बराबरी क्या? आपके चरणोंकी सेवा करना हमारा धर्म है, आपसे लड़ना हमारा कर्म नहीं। इस बालककी बातोंपर न जाइये, सन्त लोग बालकों और मतवालोंकी बातका बुरा नहीं मानते। आपका असल अपराधी तो मैं हूँ! मुझे जो दण्ड देना हो, दीजिये। यह शिर आपके सामने झुका है, कुठारका प्रहार कर अपना क्रोध शान्त कीजिये।" यह कह रामने अपना शिर झुका दिया।

परशुरामकी परुषता (कठोरता) रामकी इस नम्रतासे पराजित हो गयी। उनका सारा क्रोध जाता रहा। भला, कौनसा ऐसा वज्र-हृदय है, जो इतनी नम्रतासे न नवे? परशुरामने कुछ देर सोचकर कहा,—"अच्छा, तुम मेरा यह धनुष लेकर इसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाओ—मैं तुम्हारी परीक्षा लूँगा। यदि तुम इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये, तो मैं समझूँगा, कि शिव-धनुष तुमने अनजानसे तोड़ डाला है, निरादर करनेके लिये जान-बूझकर नहीं

तोड़ा ; और यदि प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा सके, तो मैं किसी तरह भी न मानूँगा।"

यह कह, उन्होंने अपना धनुष रामके आगे रख दिया। रामने उसे उठाकर तुरत प्रत्यञ्चा चढ़ा दी, जिसे देखकर परशुरामके सारे सन्देह मिट गये और वे समझ गये, कि राम कोई अलौकिक महापुरुष हैं, साधारण मनुष्य नहीं। ऐसा समझ, उन्होंने रामको गलेसे लगा लिया और हृदयसे आशीर्वाद दिया। यह परिवर्त्तन होते देख, सभाके सभी लोग गद्गद होकर जयजयकार करने लगे। नर-नारी, पुरजन-परिजन, सबके भय-व्याकुल प्राणोंमें आनन्दके अमृतकी धारा बह चली। मङ्गलके गीत गाये जाने और बधाईके बाजे बजने लगे।

सीताका विवाह

(१)

यथासमय राजा दशरथके पास दूत भेजकर, रामके साथ जनक-दुलारी सीताका विवाह निश्चित होनेका संवाद देदिया गया। सुनकर राजाको इतना सुख हुआ, कि वे आनन्दसे फूले अङ्गों न समाये। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्राको जिस समय यह संवाद राजा दशरथने सुनाया, उस समय वे सब प्रेम और आनन्दसे अधीर हो गयीं। बार-बार जनकके पत्रको पढ़नेपर भी उनका जी न भरता था। भरत और शत्रुघ्नने जब यह समाचार सुना, तब वे भाईको वर-वेशमें देखनेकी उत्कण्ठाके मारे व्याकुलसे हो गये। स्वयंवर-सभामें समस्त राजा-राजकुमारोंको लज्जितकर रामने जो अद्भुत पराक्रम दिखलाया, उसका वृत्तान्त सुनकर रामके ऊपर सबकी स्वाभाविक श्रद्धा-भक्ति और भी बढ़ गयी और कब बरात जाय और हम रामको दूल्हा बना देखें—यही धुन सबके सिरपर सवार हो गयी। राज-पुरीमें बधाइयाँ बजने लगीं, मङ्गलके गीत गाये जाने लगे, और दीन-दरिद्र मुँह-माँगी भिक्षा पाकर धनवान् हो गये। राजाने नगर-भरमें उत्सव-आमोद मनाये जानेकी आज्ञा दे दी। फिर तो स्वाभाविक सुन्दर अवधपुरी इन्द्रकी अमरावतीको भी लज्जित करने

लगी। घर-घर तोरण-द्वार बने और बन्दनवारें लटकने लगीं। प्रति दिन गृह-गृहमें दीपमालिकाकी भाँति सहस्र-सहस्र प्रदीप एक साथ जगमगाने लगे। जहाँ देखो, वहीं राम और सीताका नाम ले-लेकर स्त्रियाँ व्याहके गीत गा रही हैं—मानों राम सबके अपनेही घरके हों। वास्तवमें सबको ऐसा ही आनन्द हो रहा था, मानों उनके अपनेही बेटे या भाईका व्याह होने जा रहा हो।

बरात जानेका दिन स्थिर हो गया। हाथियोंके शृङ्गार होने लगे, घोड़ोंकी सजावट होने लगी, तरह-तरहके वाहन, वसन और भूषण तैयार होने लगे। नियत तिथिको हाथी-घोड़ोंपर

था, मानों अयोध्यामें कोई भी दीन-दुःखी नहीं है, सबपर लक्ष्मी-की समान कृपा है। फिर भला, उस बरातकी शोभाका क्या वर्णन हो सकता है? उसकी एक-एक वस्तु ऐसी सुन्दर, ऐसी अनमोल थी, कि आँखें पहरों देखा करें और हटनेका नाम न लें।

धीरे-धीरे बरात महा आनन्द-कोलाहल करती हुई अयोध्यासे निकली। महीनोंकी यात्रा निर्विघ्न और सानन्द बिताकर बरात जब जनकपुर पहुँची, तब संवाद पाकर जनकने, उनके स्वागतके लिये, अनेक हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सिपाहियोंकी सेना तैयारकर सोनेके कलशों, मणि-खचित चाँदीके थालों और अनेक प्रकारके बहुमूल्य पात्रोंमें भर-भरकर खाने-पीनेके सामान तथा तरह-तरहके अपूर्व उपहार भेजे। बड़ी धूमधामसे बरातका स्वागत हुआ। जनकने अपने सम्बन्धीको अपनी आदर-अभ्यर्थनासे आरम्भसेही मोहित करना आरम्भ कर दिया। रास्तेके सब स्थानोंमें मखमलके पाँवड़े बिछे हुए थे, उन्हींपर पैर रखती हुई सारी बरात आनन्द-पूर्वक उस भवनमें पहुँची, जो कि बरातियोंके ठहरनेके लिये बनवाया गया था।

उस नव-निर्मित भवनकी सुन्दर बनावट और मनोहर सजावट देख, सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके प्रति गृहमें आराम करने और मन बहलानेके लिये यथेष्ट सामग्रियाँ वर्त्तमान थीं। वहाँ जैसी सुविधा बरातियोंको हुई, उसे देख वे अपने घरकी सुध भूल गये। वह रोशनी, वह सुन्दर गुदगुदे बिछौने, वह

लगी। घर-घर तोरण-द्वार बने और वन्दनवारें लटकने लगीं। प्रति दिन गृह-गृहमें दीपमालिकाकी भाँति सहस्र-सहस्र प्रदीप एक साथ जगमगाने लगे। जहाँ देखो, वहीं राम और सीताका नाम ले-लेकर स्त्रियाँ व्याहके गीत गा रही हैं—मानों राम सबके अपनेही घरके हों। वास्तवमें सबको ऐसा ही आनन्द हो रहा था, मानों उनके अपनेही बेटे या भाईका व्याह होने जा रहा हो।

बरात जानेका दिन स्थिर हो गया। हाथियोंके शृङ्गार होने लगे, घोड़ोंकी सजावट होने लगी, तरह-तरहके वाहन, वसन और भूषण तैयार होने लगे। नियत तिथिको हाथी घोड़ोंपर क्षत्रिय-बालक, नाना प्रकारकी पालकी, रथ और सुखपाल आदि सवारियोंपर वृद्ध और ऋषि-मुनि बैठे हुए चले। मागध, सूत, भाट आदि गुण गानेवालों तथा खच्चरों, ऊँटों और बैल-भैंसोंपर लदी हुई अनन्त सामग्रियोंको साथ लिये राजा दशरथ, हाथीपर अपने दोनों पुत्रों, भरत और शत्रुघ्नको अगल-बगल बैठाये हुए बरातियों के मध्यमें होकर चले। आनन्दके बाजे बजते हुए कान बहरे कर रहे थे, हाथी घोड़ोंकी हिनहिनाहट और चिग्घाड़से बादलों गरजनेका धोखा हो रहा था और सबके अङ्ग अङ्गपर चमकते हु

ा, मानों अयोध्यामें कोई भी दीन-दुःखी नहीं है, सबपर लक्ष्मी-की समान कृपा है। फिर भला, उस बरातकी शोभाका क्या वर्णन हो सकता है ? उसकी एक-एक वस्तु ऐसी सुन्दर, ऐसी अनमोल थी, कि आँखें पहरों देखा करें और हटनेका नाम न लें।

धीरे-धीरे बरात महा आनन्द-कोलाहल करती हुई अयोध्यासे निकली। महीनोंकी यात्रा निर्विघ्न और सानन्द बिताकर बरात जब जनकपुर पहुँची, तब संवाद पाकर जनकने, उनके स्वागतके लिये, अनेक हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सिपाहियोंकी सेना तैयारकर सोनेके कलशों, मणि-खचित चाँदीके थालों और अनेक प्रकारके बहुमूल्य पात्रोंमें भर-भरकर खाने-पीनेके सामान तथा तरह-तरहके अपूर्व उपहार भेजे। बड़ी धूमधामसे बरातका स्वागत हुआ। जनकने अपने सम्बन्धीको अपनी आदर-अभ्यर्थनासे आरम्भसेही मोहित करना आरम्भ कर दिया। रास्तेके सब स्थानोंमें मखमलके पाँवड़े बिछे हुए थे, उन्हींपर पैर रखती हुई सारी बरात आनन्द-पूर्वक उस भवनमें पहुँची, जो कि बरातियोंके ठहरनेके लिये बनवाया गया था।

उस नव-निर्मित भवनकी सुन्दर बनावट और मनोहर सजावट देख, सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके प्रति गृहमें आराम करने और मन बहलानेके लिये यथेष्ट सामग्रियाँ वर्त्तमान थीं। वहाँ जैसी सुविधा बरातियोंको हुई, उसे देख वे अपने घरकी सुध भूल गये। वह रोशनी, वह सुन्दर गुदगुदे बिछौने,

खाने-पीने, खेलने और दिल बहलानेवाले हज़ारों तरहके सामान देख, लोगोंने सोचा, कि शायद इन्द्रलोकमें भी इससे अधिक सुख नहीं होता होगा। ऐसा मालूम होता था, मानों सारी ऋद्धि-सिद्धियाँ अवध-वासियोंके स्वागतके लिये जनकके जन-वासेमें उतर आयी हैं।

पिताके शुभागमनका संवाद पा, राम और लक्ष्मण विश्वामित्रके साथ-साथ जनवासेमें आये। दशरथने विश्वामित्रको प्रणामकर महीनोंसे बिछुड़े हुए दोनों प्यारे पुत्रोंको बड़ी उमङ्गके साथ हृदयसे लगाया और प्रेम-पूर्वक उनके माथेपर हाथ फेरते हुए, कोटि-कोटि आशीर्वाद दिये।

पितासे मिलनेके अनन्तर दोनों भाई बरात-भरके आदमियोंसे मिले और अपने दर्शनोंसे सबको आनन्द दिया। सबसे मिल-मिलाकर दोनों जने, भरत और शत्रुघ्नके पासही, पिताके निकट, आ बैठे। उस समय राजा अपने चारों पुत्रों सहित ऐसे शोभाय-मान हुए, मानों उनके पुण्यके प्रतापसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये चारोंही फल शरीर धारणकर उन्हें आ मिले हों। बरातके लोगोंका भलीभाँति आदर-सत्कार कर अगवानी करनेवाले गुरु शतानन्दके साथ जनकके पास लौट आये।

बरात लग्नसे बहुत पहले आ गयी थी। अतएव, सब लोग आनन्दसे इधर-उधर घूमने-फिरने, नगरकी अपूर्व शोभा देखने, तरह-तरहके आनन्द-उत्सवोंकी बहार लूटने और सुखके समुद्रमें डुबकियाँ लगाने लगे। जनकपुरके लोग बरातियोंके सुभग-सुन्दर रूप, सभ्य और सौजन्य-पूर्ण व्यवहार, मीठे वचन

तथा निर्दोष रहन-सहनको देख, राजा दशरथकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

देखते-देखते लग्नका दिन आ पहुँचा। उस दिन राजा जनकने गुरु शतानन्दको बुलाकर कहा,—"महाराज! अब क्या देर है? अब तो विवाहकी रीतियाँ होनी चाहियें।" गुरुने हामी भरी, साथ ही शङ्ख, मृदङ्ग, ढोल, नगाड़े आदि बाजे बड़े उच्च स्वरसे बजने लगे। गुरुने विप्रोंको कर्म्म-काण्ड प्रारम्भ करनेकी आज्ञा दे दी। यज्ञ-धूम्र और वेद-ध्वनिसे वायु-मण्डल व्याप्त हो गया। स्त्रियोंके कोमल और मधुर कण्ठसे निकले हुए मङ्गलके गीत कानोंमें अमृत निचोड़ने लगे।

इसके बाद गुरुने मङ्गल-कलश सज्जित करवाये और मन्त्रियोंको बुलाकर उन्हें जनवासेसे बरातवालोंको मण्डपमें बुला लानेकी आज्ञा दी। उनके जनवासेमें पहुँचतेही नगाड़ेपर चोट पड़ी और तरह-तरहके बाजे बज उठे। मन्त्रियोंने राजा जनककी ओरसे नम्रभावसे निवेदन किया, "महाराज! समय हो गया, लग्न आ पहुँचा है, अब आपलोग मण्डपमें पधारें।"

यह सुन राजा दशरथ उनके साथही चलनेको तैयार हो गये। चारों भाई चार चञ्चल और सजे-सजाये घोड़ोंपर सवार हो, अपने नेत्रानन्द-दायक मनोहर रूपसे लोगोंके नेत्र शीतल करते हुए चले। सुन्दरतामें कामदेवको भी लजानेवाले रामके कमनीय रूपको देख, सब लोग मानों मन-ही-मन कह रहे थे—

देखि देक नैननि ते नेक ना अघैये इन,
ऐसी झुकाझुक पै झपाक अखियाँ दई।
कीजे कहा राम-श्याम-आनन विलोकिबेको,
विरचि विरंचि ना अनन्त अँखियाँ दई॥

उस समय मानों शिवके तीन, ब्रह्माके आठ और इन्द्रके सहस्र नेत्रोंपर उन्हें बड़ी ईर्ष्या उत्पन्न हो रही थी। राम और भरतकी वह मरकत-मणिके समान श्याम, और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नकी सुवर्णके समान गौर-कान्ति देखकर, भला कौन मुग्ध नहीं होता?

बाजे-गाजेके शब्दसे बरातका आना जान, जनककी रानी सुहागिनोंको बुलाकर आरतीकी सामग्री सजाने लगीं। तरह-तरहके माङ्गलिक द्रव्य सोनेके थालोंमें लिये गजगामिनियाँ रानीको आगे किये, दूल्हेकी आरती करने चलीं। दोनों ओरके बाजे इस बार अधिक उमङ्गके साथ घोर गर्जन कर उठे। मारे कोलाहलके कान बहरे होने लगे।

रानीने बड़े प्रेमसे दूल्हेकी आरती उतारी। उस समय रामका सुन्दर रूप और मनोहर वेश देखकर उनके हृदयमें अवर्णनीय सुख हुआ। उन्होंने सीताके भाग्यको सौ-सौ बार सराहा और उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ आये। आरतीकी विधि पूरी हो चुकनेपर राम मण्डपमें आये। उस समय घण्टा, शङ्ख, बाँसुरी, नगाड़े, ढोल आदि तरह-तरहके बाजे फिर बड़े ज़ोरसे बज उठे। ब्राह्मणोंने वेद-ध्वनिसे आकाशको गुँजाते हुए वरकी

मङ्गल-कामना की। स्त्रियाँ अपने कोयल जैसे कण्ठसे माङ्गलिक मधुर गीत गा-गाकर हृदयका हर्ष प्रकट करने लगीं। मण्डपकी विचित्र रचना तथा निराली शोभा देख-देखकर घरातियोंने बड़ा सुख पाया और सब लोग जनकके वैभवकी बड़ाई करने लगे।

सबके मण्डपमें पधारनेपर राजा जनकने सबको यथा-योग्य आसनोंपर बैठाया और वरके पिता तथा अन्यान्य गुरु-जनोंकी पूजा कर आशीर्वाद ग्रहण किया। इसके बाद राजाने जामाताका विधिवत् आदर किया—उन्हें अर्घ्य दिया और उनकी पूजा की। तदनन्तर कन्या-दानका उपयुक्त काल आनेपर राजाने सीताको बुलवाया। सीताका वधू-वेशमें मनोहर शृङ्गार किये, चतुर और सुन्दरी सहेलियाँ उसे लिये हुए मण्डपमें आयीं। सहेलियोंके बीचमें उस समय सीता ऐसी ज्ञात होती थी, मानों सुन्दरता स्वयं रूप धारणकर सुन्दरियोंको अपनी शोभा दिखा रही है।

अबके दोनों ओरके पुरोहितोंने वेद-विधि और कुलाचारके अनुसार विवाहके सब कार्य्य कराये। तदनन्तर राजा जनकने रीतिके अनुसार रामके चरण धो, माथेमें रोरीका तिलक लगा, कन्या-दान किया! जैसे हिमालयने पार्वती शिवको दी, समुद्रने लक्ष्मी नारायणको दी, वैसेही जनकने भी आज अपनी प्यारी पुत्री रामके हाथमें सौंप दी। चारों ओरसे वेदकी ऋचाओंकी

रीतिके अनुसार भाँवरें फेर, वर और वधू दोनों एक आसन-पर बैठाये गये। उस समय अपने पुण्यरूपी वृक्षके इन सुन्दर फलोंको देख-देखकर जनक और दशरथ मारे आनन्दके अपनी देहकी सुध भूल गये!

इसके बाद राजा जनकने अपनी और तीन पुत्रियोंको भी साथ-ही-साथ रामके तीन छोटे भाइयोंके सङ्ग ब्याह देनेकी इच्छा प्रकट की। जनकने तो अपने मनमें पहलेसेही यह सङ्कल्प कर लिया था, परन्तु राजा दशरथको उनके इस विचारका कुछ भी पता नहीं था। इस प्रकार आनन्दमें और आनन्द मिलते देख, दशरथ हर्षसे विह्वल होगये और उन्होंने बड़े प्रसन्न-चित्तसे

ड़ाई मैं कहाँतक करूँ ? आपने जो कृपाकर मेरे कुलसे सम्बन्ध
किया, उससे मैं धन्य-धन्य हो गया। मैं आपको और क्या उपहार
? मेरे पास हैही क्या ? मुझमें आपको कुछ भी देनेकी सामर्थ्य
नहीं है। तोभी मैंने आज जो ये दासियाँ आपकी सेवाके लिये
दी हैं, इनको पुत्रीके समान जान, इनका उचित लालन-पालन
कीजियेगा। इनके द्वारा उभय-कुलोंकी मान-मर्यादा बढ़ेगी,
ऐसा मेरा विश्वास है; क्योंकि इन्होंने भली-भाँति गृह-धर्मकी
शिक्षा अपनी माता और अध्यापिकाओंसे पायी है और सास-
ससुरकी सेवा करते हुए स्वामीकी छायाके समान अनुगामिनी
और किङ्करी बनी रहनेका महत्त्व समझा है।"

राजा जनकके इन मीठे वचनोंसे सन्तुष्ट हो, प्रेम-पूर्वक गले-
गले मिल, राजा दशरथ सब पुत्रों, वधुओं और बरातियोंके
साथ जनवासेमें चले आये।

जनवासेमें आनेपर खाने-पीनेकी ठहरी। राजा जनकने
पहलेसेही बरातके भोजनकी व्यवस्था कर रक्खी थी। सबने
बड़े प्रेमसे भोजन किया और राजा जनककी ओरसे जो लोग
बरातको जिमानेके लिये आये थे, उनके आदर-पूर्ण वचन,
विनय-भरे भाव, उत्साह-सहित काम करनेकी रीति देख-सुन-
कर सब लोगोंके केवल पेटही नहीं, जी भी अच्छी तरह

वारीकी पहली देखा-देखीमें जो प्रीतिकी लता अङ्कुर-रूपमें उगी थी, वह मानों एक साथही फूल-फलवाली हो गयी। सङ्कोच और लज्जाका पूरा-पूरा अधिकार होते हुए भी सीता, रामके उस लुभावने रूपको वार बार देखने और मन-ही-मन परम सुख अनुभव करने लगी। करोड़ों कामको लज्जित करनेवाले शरीर की वह श्याम शोभा, वह व्याहका वर वेश, महावरसे युक्त वे चरण युगल, वह पीतपट, वह पीला जनेऊ, वह चौड़ी छाती, उन्नत ललाट, वे कमलकीसी बड़ी बड़ी आँखें, उनके ऊपर वे बाँकी भौंहें वह सुएकीसी नासिका, अङ्ग-अङ्गके वे रत्न-जड़े आभूषण देख सीताके नेत्र सुखी हो गये। उसने देवता-रूपसे अपने स्वामीको अपने हृदय मन्दिरमें जन्म जन्मान्तरके लिये प्रतिष्ठित कर लिया

इधर रामने भी सीताकी सर्वाङ्ग-सुन्दर शोभा देख, इतना सुख पाया, कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका वह सुडौल शरीर, अङ्ग-प्रत्यङ्गकी वह कमनीय कोमलता, वह सरल सलज्ज व्यवहार—सक्षेपत, वह देवीकीसी सर्वाङ्ग-सुन्दर मूर्ति उनके नयनोंमें बस गयी। जिस आदरके साथ राम उस समय सीताको अपने हृदयमें स्थान दिया, वह जीवनके अन्त तक ज्योंका त्यों बना रहा। क्या सोते, क्या जागते, क्या स्वप्न क्या सुखमें, क्या दु खमें, क्या घरमें, क्या वनमें, क्या पास, क्या दूर—रामकी आँखोंके आगे वह देवी-मूर्त्ति र विराजमान रही। बड़े आनन्दके साथ प्रथम मिलनकी : मङ्गलमयी रजनीका सुखमय प्रभात हुआ।

दूसरेही दिन राजा दशरथने राजा जनकसे विदा माँ

जिसे सुन वे बड़े उदास हो गये। उन्होंने कुछ दिनोंतक ठहरने और आतिथ्य-ग्रहण करनेके लिये उनसे बड़ा आग्रह किया। लाचार दशरथको कई दिनोंतक वहीं ठहरना पड़ा। जनक अपने आदर-आतिथ्यसे सब बरातियोंका मन मोहित करने लगे। अन्तमें वह दिन आही गया, जब कि उनके घरसे जन्म-भरके लिये कन्याओंको विदा होना पड़ा! माताका हृदय कन्याओंके विछोहको स्मरणकर दो टुकड़े हुआ जाता था; पर समाजका नियम, विधाता-का विधान! बेटी सदा बापके घर रह नहीं सकती। वह तो परायी धरोहर—चार दिनकी पाहुनी है। पति-गृहही उसका चिर-निवास है। इसलिये लाख मोह-माया होनेपर भी, वियोगजनित दुःखके वेगको दबाकर माता-पिताने कन्याओंको प्रेमके साथ विदा किया। जाते समय माता कहने लगी,—"बेटियो! तुम स्वनाम-धन्य राजा निमिके कुलकी कन्याएँ हो और परम प्रतापी सूर्यवंशीय राजाके घर बहुएँ बनकर जाती हो। सदा इन दोनों उच्चवंशोंकी मान-मर्यादाका ध्यान रखते हुए, अपनी रहन-सहन, आचार-व्यवहार और शील-स्वभावसे सबको प्रसन्न करना। पतिको इहलोकके ईश्वर, परलोकके परमेश्वर, स्वर्गा-पवर्गके दाता और अपना सर्व्वस्व समझना। आजसे तुम्हारे पिता राजा दशरथ और माताएँ उनकी रानियाँ हुईं। उनकी परम श्रद्धा-भक्ति करना। उनकी सेवा करनेसे तुम्हारे लोक-परलोक दोनों बनेंगे। पास-पड़ोसियोंसे सदा हिल-मिलके बोलना, दास-दासियोंको भी कभी कड़वे वचन न कहना। ऐसे अच्छे ढङ्गसे सबसे बरतना, कि तुम्हारे ऊपर सभी अनुराग करने

वारीकी पहली देखा-देखीमें जो प्रीतिकी लता अङ्कुर-रूपमें उगी थी, वह मानों एक साथही फूल-फलवाली हो गयी। सङ्कोच और लज्जाका पूरा-पूरा अधिकार होते हुए भी सीता, रामके उस लुभावने रूपको बार-बार देखने और मन-ही-मन परम सुख अनुभव करने लगी। करोड़ों कामको लज्जित करनेवाले शरीर-की वह श्याम-शोभा, वह व्याहका वर-वेश, महावरसे युक्त वे चरण-युगल, वह पीतपट, वह पीला जनेऊ, वह चौड़ी छाती, उन्नत ललाट, वे कमलकीसी बड़ी-बड़ी आँखें, उनके ऊपर वे बाँकी भौंहें, वह सुएकीसी नासिका, अङ्ग-अङ्गके वे रत्न-जड़े आभूषण, देख, सीताके नेत्र सुखी हो गये। उसने देवता-रूपसे अपने स्वामीको

जैसे सुन वे बड़े उदास हो गये। उन्होंने कुछ दिनोंतक ठहर- और आतिथ्य-ग्रहण करनेके लिये उनसे बड़ा आग्रह किया। लाचार दशरथको कई दिनोंतक वहीं ठहरना पड़ा। जनक अपने आदर-आतिथ्यसे सब बरातियोंका मन मोहित करने लगे। अन्तमें वह दिन आही गया, जब कि उनके घरसे जन्म-भरके लिये कन्याओंको बिदा होना पड़ा! माताका हृदय कन्याओंके बिछोहको स्मरणकर दो टुकड़े हुआ जाता था; पर समाजका नियम, विधाता-का विधान! बेटी सदा बापके घर रह नहीं सकती। वह तो परायी घरोहर—चार दिनकी पाहुनी है। पति-गृहही उसका चिर-निवास है। इसलिये लाख मोह-माया होनेपर भी, वि-योगजनित दुःखके वेगको दबाकर माता-पिताने कन्याओंको प्रेमके साथ बिदा किया। जाते समय माता कहने लगी,—"बेटियो! तुम स्वनाम-धन्य राजा निमिके कुलकी कन्याएँ हो और परम प्रतापी सूर्यवंशीय राजाके घर बहुएँ बनकर जाती हो। सदा इन दोनों उच्चवंशोंकी मान-मर्यादाका ध्यान रखते हुए, अपनी रहन-सहन, आचार-व्यवहार और शील-स्वभावसे सबको प्रसन्न करना। पतिको इहलोकके ईश्वर, परलोकके परमेश्वर, स्वर्गा पवर्गके दाता और अपना सर्वस्व समझना। आजसे तुम्हा पिता राजा दशरथ और माताएँ उनकी रानियाँ हुईं। उनक परम श्रद्धा-भक्ति करना। उनकी सेवा करनेसे तुम्हारे लोक परलोक दोनों बनेंगे। पास-पड़ौसियोंसे सदा हिल-मिल बोलना, दास-दासियोंको भी कभी कड़वे वचन न कहना। ऐ अच्छे ढङ्गसे सबसे बरतना, कि तुम्हारे ऊपर सभी अनुराग कर

लग जायँ। मैं आशीर्वाद करती हूँ—तुम्हारा सौभाग्य अचल हो, तुम पतिव्रताओंमें शिरोमणि बनो, केवल गृह-लक्ष्मीही नहीं,—पतिकी यथार्थ सहधर्मिणी होओ।"

यह कह माताने बारी-बारीसे सब कन्याओंको गले लगाकर स्नेह और आशीर्वादके आँसू गिराते-गिराते विदा किया। जिस समय वे रोती हुई पालकियोंपर सवार हुईं, उस समय रानी पानी बिना मछलीकी भाँति छटपटाने लगीं—मानों दशरथने आज उनका सर्वस्व छीन लिया! यह त्याग, यह विसर्जन, यह वियोग भी कैसा अद्भुत, कैसा सुख-दुःखमय, कैसा अमृत-गरलमय और कैसा एक सङ्गही अच्छा और बुरा है!

जनकने इस बार और भी अनेक वस्तुएँ बेटियोंकी विदाईमें दीं। असंख्य हाथी-घोड़े, अपरिमित मणि-माणिक्य, अनगिनत काम-धेनु-स्वरूप गौएँ और संसार-दुर्लभ वस्त्राभूषणोंकी लाखों पेटियाँ भर-भरकर दहेजमें दी गयीं। इस प्रकार अलौकिक कन्या-रत्नों और दुष्प्राप्य धन-रत्नोंको साथ लेकर राजा दशरथ, अपने संगी-साथियोंके साथ, अयोध्याको चले। जनकने, सबको अपना पूज्य समझ, प्रणाम किया और कुछ दूरतक बरातके साथ-साथ गये। लौटते समय उनके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा बह चली। उन्होंने घर आकर देखा,—वह आँगन जो चार-चार लक्ष्मी-सरीखी बालिकाओंके क्रीड़ा-कौतुकसे सुशोभित रहा करता था, शून्य पड़ा है! अभी-अभी उनके विवाहके उपलक्षमें लाखों अतिथियोंके आमोद-प्रमोद, चहल-पहल और विवाह-सम्बन्धी रीति रस्मोंकी धूम-धामसे जहाँ तिल धरनेको भी स्थान नहीं

मिलता था, उस आँगनकी सारी शोभा, सारी श्री, समस्त सुषमा लुप्त हो गयी है। माता, जल बिना मीन, मणि बिना फणी, प्राण बिना देहकी भाँति श्री-हीन हो पृथ्वीपर पड़ी हुई हैं। समाजके मङ्गलके लिये, ईश्वरीय नियमकी रक्षाके लिये, यह त्याग एक दिन सभी कन्याओंके माता-पिताको करना पड़ता है। अपने उज्ज्वल गुणोंसे, अनुपम पातिव्रतसे, मानवी होकर भी जो कन्या देवी-पदके योग्य बन जाती है, उसीके माता-पिताका यह त्याग सफल होता है।

जनकका यह त्याग किस प्रकार सफल हुआ? उनकी कन्याने किस प्रकार उनकी, पति-कुलकी, अपनी, और स्त्री-जातिकी मर्यादा बढ़ायी? यह इस उपाख्यानके अगले पृष्ठोंका पाठ करनेसे आपही ज्ञात हो जायगा।

अस्तु; उधर जनकका घर सूना हुआ, इधर दशरथका घर हराभरा हुआ। अयोध्या-भरमें आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। सारे नगर-निवासी, जो विवाहके समय जनकपुर न जा सके थे और जिनमें रोगी, वृद्ध, बाल और वनिताओंकी-ही संख्या अधिक थी, वर-वधुओंको देखनेके लिये दौड़ पड़े। स्थान-स्थानपर ध्वजा-पताका और तोरण-द्वार सजाये गये थे, उनकी शोभा निरखते, पथके दोनों पार्श्वमें खड़ी हुई असंख्य नर-नारियोंके कण्ठसे निकली हुई आशीर्वाद और जयजयकी ध्वनियाँ सुनते हुए सब लोग राजद्वारपर आये। रानियाँ बड़े आनन्द-उल्लासके साथ मङ्गल-गीत गाती हुई, आरती उतार, वर-कन्याओंको महलोंके भीतर ले गयीं। पुत्र-

घधुओंके चन्द्रमाके समान शोभनीय मुख देख सबको असीम आनन्द हुआ।

जिस दिनसे सीता और उसकी वहनोंका अयोध्यामें पदार्पण हुआ, उसी दिनसे वहाँ नाना प्रकारके आमोद-प्रमोद, आनन्द-उत्सव जारी हो गये। जो भिकमंगा आता, चाहे उसकी माँग कितनीही बड़ी क्यों न हो, मुँहमाँगी वस्तु पाकर निहाल हो घर जाता। उस दिनसे कोई निराश होकर उस द्वारसे न लौटता। जहाँ देखो, वहीं आनन्द, वहीं सुख, वहीं सौभाग्य-सम्पद् दिखाई देने लगी। मानों सीताके आतेही, त्रितापने त्रासके मारे अयोध्या छोड़ दी और वह तीन लोकसे न्यारी हो गयी।

राज्याभिषेककी तैयारी

(१)

रामचन्द्रका विवाह हुए वारह वर्ष हो गये। दिन, पक्ष, महीना, वर्ष करते-करते इतना दीर्घ काल ऐसे सुख और आनन्दके साथ कट गया, कि किसीको मालूम भी नहीं हुआ। वास्तवमें, सुखके दिन जाते देर नहीं लगती। अब सीता बालिका नहीं, इस समय वे पूर्ण युवती और गृहिणी हैं। राजाने उनके लिये पृथक् निवास-भवन बनवा दिया है, अपनी दास-दासियों और सखी-सहेलियोंके साथ वे वहीं रहती हैं; परन्तु सासुओंकी सेवा-टहल करने और उनके दर्शनों तथा उपदेशोंसे पवित्र होनेके लिये, वे नित्य साँझ-सवेरे उनके पास जाती और हित-भरी शिक्षाएँ तथा प्रेम-भरे आशीर्वाद ले आती हैं।

रामचन्द्र अब प्रायः अपने नये भवनमेंही रहते हैं; परन्तु दोनों वेला माता-पिताकी चरण-वन्दना और राज-सभाके समय राज-कार्यमें पिताकी सहायता करनेके लिये प्राचीन राज-मन्दिर और राज-सभामें उपस्थित रहते हैं। विश्राम और अवकाशका समय सीताके सहवासमेंही व्यतीत होता है।

दम्पतीने अपना विवाहित जीवन बड़े आनन्दसे विताया।

कहींसे भी कलह, विश्टङ्खला और राग-द्वेषका नाम नहीं सुनाई देता था। जैसे रामचन्द्र मातृ-पितृ-सेवा, गुरु-भक्ति, प्रजा-रञ्जन और अपनी नव-विवाहिता पत्नीके मनोरञ्जनमें मन लगाते तथा उन्हें पूर्ण गृहलक्ष्मी बनानेके लिये निरन्तर गृहधर्मकी शिक्षा दिया करते थे, उसी प्रकार सीतादेवीने भी पति-सेवा, सास-ससुर और बड़ी-बूढ़ियोंके सम्मान तथा सेवाशुश्रूषा एवं अन्यान्य अच्छे गुणोंसे सबका मन अपनी मुट्ठीमें कर लिया। सब यही कहते, कि यह रमणी रूपमें साक्षात् लक्ष्मी और गुणमें सरस्वतीके समान है। रूप और गुणका ऐसा सम्मिलन संसारमें बहुत कम पाया जाता है।

रामचन्द्र, ऐसी सुशीला और सर्व-गुण-आगरी पत्नी पाकर, मन-ही-मन अपनेको परम भाग्यवान् समझते थे। जिस समय उनकी मातायें अपनी बड़ी बहूकी बड़ाई करने लगतीं, उस समय रामचन्द्रके हृदयमें हर्षकी अपार तरङ्गें उठने लगती थीं। वे जब सुनते और जिससे सुनते, सीताकी केवल प्रशंसाही सुननेमें आती। वे देखते—सीतादेवी उनको प्रसन्न रखनेके लिये, उनको सदा सुखी करनेके लिये सौ-सौ तरहके यत्न किया करती हैं। उनकी एक-एक बात उनके लिये वेद-वाक्य थी और उनकी आज्ञा उनके लिये देव-राजकी आज्ञासे भी बढ़कर थी। वे जो शिक्षायें उन्हें देते, वे उनके हृदय-पटपर अमिट अक्षरोंमें सदैवके लिये लिख जाती थीं। युवराजकी पत्नी, भावी पटरानी होकर भी सीता अपने हाथों पतिके पूजनीय चरणोंको दबातीं और उनकी नाना भाँतिसे सेवा-टहल करती थीं। अनेकानेक

दास-दासी और पाचक-पाचिकाओंके रहते हुए भी वे अपने हाथों पतिके लिये भाँति-भाँतिके भोजन बनातीं और बड़े प्रेम-पूर्व्वक पङ्खा झलते हुए खिलाने बैठती थीं। सीताके इस व्यवहारसे रामको कितना आनन्द होता, सो कहा नहीं जा सकता।

इधर राज-कार्य्यमें रामको बड़ा भाग लेना पड़ता था, क्योंकि पिताकी अवस्था दिन-दिन अधिक होती जाती थी और बुढ़ापेके कारण उनमें काम करनेकी वैसी सामर्थ्य न रह गयी थी। अत्यन्त अल्प अवस्थासेही रामने बड़ी निपुणता और नीतिज्ञताके साथ पिताके राज्य-सम्बन्धी कामोंमें हाथ बँटाया और अपने अलौकिक न्याय, गम्भीर नीतिमत्ता और अनुपम प्रजा-रञ्जकता-से सारी प्रजाका मन मुग्ध कर लिया। राज-कार्य्य समाप्त कर जब वे अपने महलोंमें आते, तब उनके मुँहसे प्रतिदिनकी कार्यावली सुन, सीता बड़ी प्रसन्न होतीं और ऐसा देव-तुल्य स्वामी पानेके लिये विधाताको बार-बार धन्यवाद देती थीं। साथ-ही रामचन्द्र सदा-सर्वदा उनके साथ शुद्ध, सरस और सरल व्यवहार कर आदर्श पति होनेका जो परिचय देते, उससे उनके हृदयमें प्रेमका सागर उमड़ आता था। इन बारह वर्षोंके निरन्तर ऐसे प्रेममय व्यवहारके कारण, दोनों पति पत्नीका प्रेम दिन-दिन बढ़ता गया और वे सचमुच "एक प्राण दो देह" हो गये।

इसी समय एक दिन राज-सभामें बैठे हुए महाराज दशरथने अपने गुरु वशिष्ठजीसे कहा,—"गुरुवर! अब मैं बहुत वृद्ध हो

गया, राज्यका यह गुरुतर भार अब मुझसे सम्हाला नहीं जाता; इसलिये मेरी बड़ी इच्छा हो रही है, कि अपने सामने रामको राजगद्दी दे, आप वानप्रस्थका अवलम्बन करूँ; क्योंकि वे बहुत दिनोंसे राज-काज देखने लगे हैं और सारी प्रजा उनसे प्रसन्न भी है। इस जीवनमें मेरी जितनी भी अभिलाष-आकांक्षाएँ थीं, आपके चरणोंकी दयासे सब पूरी हुईं, अब यही एक शेष रह गयी है। इसे भी पूरा कर लूँ, तो निश्चिन्त होकर मरूँगा, नहीं तो पछतावाही रह जायगा। कारण, कि इस नश्वर शरीरका क्या ठिकाना? अभी है, अभी नहीं है।"

यह सुन मुनिवर वशिष्ठने कहा,—"राजन्! आपका यह विचार अति उत्तम है। रामचन्द्र सब तरहसे योग्य हैं। वे नीतिमें पूरे दक्ष हैं और प्रजाका शासन तथा रञ्जन दोनोंही भली भाँति करना जानते हैं। आप इसके लिये एक दिन दरबार कीजिये और प्रजाके सब मुखियोंको बुला, उनकी सम्मति तथा मन्त्रियोंके परामर्शसे, सब कार्य्योंकी व्यवस्था कीजिये। आपके इस नवीन प्रबन्धके विषयमें लोक-मत क्या है—यह जानना अत्यन्त आवश्यक है।"

मुनिकी आज्ञा शिरोधार्य्यकर राजाने अपनी इस इच्छाका सर्वत्र प्रचार करा दिया और एक नियत तिथिको सब लोगोंको दरबारमें आकर अपना मत प्रकट करनेके लिये निमन्त्रित किया।

आज संसारमें प्रजातन्त्र-शासन-प्रणालीकी* सर्वत्र धूम है और प्रायः सभी देशोंमें अब इसी तरहका शासन प्रचलित भी हो गया

* प्रजाके इच्छानुसार राज्य-शासन करनेकी रीति।

है; किन्तु भारतके लिये यह नीति कुछ लोग असम्भव बतलाते हैं और कहते हैं, कि यहाँ न तो कभी प्रजातन्त्र-शासन रहा और न यह रीति यहाँवालोंको कभी पसन्द ही आ सकती है, क्योंकि भारतवासी सदासे "राजा करे सो न्याय"—वाली नीतिकोही मानते आये हैं। ऐसे लोगोंको लाखों वर्ष पहलेके भारतमें, महाराज दशरथके इस दरबारकी बातपर ध्यान देना चाहिये। वे अपने सर्व-गुण-सम्पन्न पुत्रको भी राजगद्दीपर बैठानेके लिये तैयार नहीं थे, जबतक कि सारी प्रजा उनके इस कार्यका अनुमोदन न करले। वास्तवमें प्राचीन भारतके राजागण केवल प्रजा-पालक और शासकही नहीं थे, वरन् प्रजारञ्जक भी थे। तभी तो आजतक उनका नाम वैसोही प्रतिष्ठाके साथ लिया जाता है और उनका नाम लेनेसे आत्मा पवित्र होती है, मन सुखी होता है, हृदयमें आदर और श्रद्धाके भाव लहराने लगते हैं।

अस्तु ; नियत तिथिको बड़े ठाटबाटसे दरबार लगा। प्रजा-पक्षके बड़े-बड़े नेताओंसे लेकर छोटे-छोटे गाँवोंके मुखियेतक दरबारमें आये और यथायोग्य आसनोंपर बैठे। मन्त्रियों और सामन्त-सरदारोंके आनेके बाद महाराज भी अपने दो पुत्रों, राम और लक्ष्मणको साथ लिये हुए आ विराजे; क्योंकि भरत और शत्रुघ्न इन दिनों अपने ननिहाल गये हुए थे। तदनन्तर राजाने सबके सामने अपने विचार प्रकट किये और कहा, कि "यदि राम योग्य न हों, उनमें यदि आपको कोई दूषण दिखाई देता हो, तो आपलोग निस्सङ्कोच दूसरे किसी योग्य व्यक्तिका नाम लें—मैं यह राज्य-भार उसेही दे डालूँगा।"

परन्तु सबने, एक स्वरसे रामचन्द्रका जयजयकार करते हुए, कहा,—"महाराज! रामचन्द्र सब तरहसे योग्य हैं। उनके गुणोंका वर्णन कहाँतक किया जाय? बालकसे लेकर बूढ़ेतक, सब उनकी प्रशंसा करते हैं। आप अवश्य उन्हींको राज्यका भार सौंप दीजिये। हमलोगोंको पूर्ण विश्वास है, कि वे आपकीही तरह न्याय-सहित प्रजाका पालन करेंगे।"

सबको इस प्रकार एक मुँहसे रामकी प्रशंसा करते देख, राजा दशरथ बड़ेही प्रसन्न हुए और उन्होंने आनन्दमें मग्न होकर कहा,—"प्यारे प्रजावर्ग और उपस्थित सज्जनवृन्द! आप लोगोंने जो रामचन्द्रकोंही युवराज बनानेकी सम्मति प्रदान की है, उससे मैं कितना पुलकित हुआ हूँ, सो कह नहीं सकता। राम मेरे प्राणोंके प्राण हैं, उनके गुणोंपर मैं स्वयं मुग्ध हूँ; परन्तु यदि आप लोग मेरे इतने प्यारे रामको भी गद्दीपर बैठाना न चाहते, तो मैं कदापि आपकी सम्मतिके विरुद्ध कार्य न करता। आपका और मेरा मत एक हो गया, यह देख मैं बड़ाही सुखी हुआ हूँ। अब मैं कलही उनका अभिषेक कर डालूँगा, आपलोग प्रसन्न चित्तसे इसके लिये आनन्दोत्सवकी व्यवस्था कीजिये।"

यह सुनकर सब लोग बड़े आनन्दित चित्तसे घर गये और थोड़ीही देरमें कदली-स्तम्भ, मङ्गल-कलश, स्वर्णदीप और वन्दनवारें घर-घर दिखाई देने लगीं। बातकी बातमें अयोध्याकी यह न्यारी शोभा हो गयी, जिसे देख इन्द्रपुरी भी लज्जित होने लगी। गुरुने रामचन्द्रको रातभर व्रतोपवास और देवाराधनमें बितानेका उपदेश दिया। तदनुसार राम और सीता दोनोंहीने रात्रि-

जागरण करनेका सङ्कल्प किया। कल भोर होतेही जो कठिन राज्य-भार—लक्ष-लक्ष प्रजाओंके रक्षण, पालन और शासनका उत्तरदायित्व—उनको सौंपा जायगा, उसे ग्रहण करनेके पहले मनके साथ-ही-साथ शरीरकी शुद्धि करना भी अत्यन्त आवश्यक है—यही समझकर उन्होंने देवार्चन और व्रतोपवासमेंही समय विताना अच्छा समझा।

इधर माता, पिता, भाई, पत्नी, प्रजा—सबके मनमें आनन्द और उत्साहकी लहरें उठ रही थीं, उधर कुटिल-विधाता इस सारे आनन्दको देख-देखकर घृणाकी हँसी हँस रहा था। एका-एक रसमें विष मिला—विधाताकी कुटिलता काम कर गयी और सारे आनन्द, सारे उत्सव और समस्त उत्साहपर पाला पड़नेका सूत्रपात हो गया! सबको आनन्दमें पड़े हुए कल्पनाके लड्डू खाने दीजिये, आइये पाठक और पाठिकाओ! हमलोग उस स्थानपर चलें, जहाँसे वह भयानक ज्वालामुखी-पर्वत फूटने-वाला है, जो कल भोर होते-होते सारे रङ्गमें भङ्ग डाल देगा।

२

हम पहलेही कह चुके हैं, कि राजा दशरथके तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। मँझली रानी कैकेयीके पित्रालयसे एक दासी उनके साथ दहेजमें आयी थी। उस दासीपर उनका बड़ा अनुराग था; कारण, उसने लड़कपनसेही उन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया था। वह दासी बूढ़ी और कुबड़ी थी—उसका कुत्सित रूप देखकरही सबको उसपर अकारण घृणा उत्पन्न

होती थी। परन्तु जैसाही उसको भयावना रूप मिला था, वैसाही उसका कुटिल हृदय भी था। उसने कैकेयीको तरह-तरहसे सिखा-पढ़ाकर ऐसा पक्का कर दिया था, कि उन्होंने राजाको अपनी मुट्ठीमें करलिया था। राजा अपनी अन्य रानियोंकी अपेक्षा कैकेयीकोही अधिक मानते और सच पूछिये तो, उनसे डरते भी थे। मन्थराके मन्त्रकी इसी शक्तिको देखकर, वे प्रत्येक विषयमें उसका परामर्श लेतीं और वह जैसा कहती, वैसाही करती थीं।

इस कपटी, कुटिल, अपयशकी पिटारी मन्थराने जब रामचन्द्रके अभिषेकका संवाद सुना और अयोध्याभरमें आनन्द-उत्सवोंका समुद्र उमड़ते देखा, तब तो मारे ईर्ष्याके वह जल-भुनकर राख हो गयी; क्योंकि, दुष्टोंका तो यह स्वभावही है, कि वे विना प्रयोजनके भी दूसरेकी बुराई देख प्रसन्न और भलाई देख दुःखी होते हैं। उसने मन-ही-मन सोचा,—"यदि रामचन्द्रको गद्दी मिलेगी, तो कौशल्या-रानीका एकाधिपत्य हो जायगा, फिर कैकेयीको कौन पूछेगा? फिर तो भरत दासकी तरह रामको सेवा करते फिरेंगे।" इन्हीं बातोंको सोचती-विचारती और मन-ही-मन करोड़ों कुटिल कल्पनाएँ करती हुई वह रानी कैकेयीके पास आयी।

उस समयतक कैकेयीको रामचन्द्रके अभिषेककी बात ज्ञात नहीं थी। मन्थराने आतेही कहा,—"पड़ी-पड़ी क्या सोच रही हो, कुछ वसन्तकी भी ख़बर है? रामको कल राजगद्दी मिलेगी! सारी अयोध्या आनन्द-उत्सवसे भर उठी है! तुम्हें अभीतक कुछ मालूमही नहीं?"

कैकेयी और मन्थरा ।

"ले, यह शुभसमाचार सुनानेके लिये मैं तुझे अपने गहने उतारकर इनाम देती हूँ ।"

Burman Press, Calcutta

[पृष्ठ—४६]

यह सुन कैकेयीने मारे प्रसन्नताके गद्‌गद् होकर कहा,—"मन्थरा! तेरे मुँहमें घी-शक्कर पड़े, क्या यह सत्य है? क्या सचमुच कल रामका राज्याभिषेक होगा? ले, यह शुभ समाचार सुनानेके लिये, मैं तुझे अपने गहने उतारकर इनाममें देती हूँ।" यह कह रानीने अपने समस्त आभूषण उतारकर मन्थराके आगे डाल दिये और कहा,—"इन्हें उठा ले, पीछे और भी पुरस्कार दूँगी।"

रानीके गहनोंको बड़े ज़ोरसे एक कोनेमें फेंककर कुटिला दासी बोली,—"तुम सदा भोलीही रहोगी! मैं बूढ़ी हुई, मेरा कहा अब काहेको मानोगी? देखतीं नहीं, यह तुम्हारे सर्वनाश-की तैयारी हो रही है। तुम तो इस समाचारसे इतना सुख मानती हो, पर ज़रा उनकी कुटिलताको तो देखो! उन्होंने तुमसे छिपाकर अभिषेकका सारा प्रबन्ध कर लिया! कौशल्याके पेटमें बड़ी-बड़ी आँतें हैं, रानी! तुम क्या समझोगी? तुम तो गायकी तरह सीधी, दूधकी सँवारी हो—इतना छल-कपट तुम्हें कहाँसे आने लगा? तुम्हारा बेटा भरत यहाँ नहीं है, ऐसे समयमें रामचन्द्रको गद्दीपर बैठानेका क्या मतलब? तुमसे यह समाचार गुप्त रखनेका क्या तात्पर्य्य? यह सब चाल है, रानी! सरासर चाल है।"

पहले तो रानीने मन्थराको इस कपट-मन्त्रणापर बहुत कोसा-दुत्कारा और रामके अभिषेकको अपने सुख-सौभाग्यका कारण बताया; परन्तु मन्थराके बारंबार विष उगलनेसे उनके मनमें सौतियाडाह उत्पन्न हो गया और उन्हें यह बात भलीभाँति जँच गयी, कि सौतके बेटेको गद्दी मिलनेसे उनका कल्याण नहीं है।

फिर तो वे मन्थराके गले लग गयीं और बार-बार पूछने लगीं,-"मन्थरा! तेरीसी हितकारिणी मेरी और कोई नहीं है। कोई ऐसा उपाय सोच, जिससे रामको राज्य न मिलकर मेरे पुत्र, भरतको मिले।"

कैकेयीको इस प्रकार अपने मतपर आयी देख, मन्थरा बोली,—"रानी! उपाय क्या पूछती हो? उपाय तो तुम्हारे हाथमें है। क्या तुम्हें उस युद्धकी बात याद नहीं है, जब शम्बरके साथ लड़ाई करते हुए राजा बहुत घायल हो गये थे? उस समय एकमात्र तुमनेही उनकी सेवा-टहल की थी और तुम्हारे यत्नसे आरोग्य-लाभ कर राजाने तुम्हें दो वर देनेका वचन दिया था। तुमने उस समय कहा था, 'और कभी माँग लूँगी।' फिर इसी समय वे दोनों वर क्यों न माँग लो? राजाको उस प्रतिज्ञाकी याद दिलाते हुए, पहला वर तो यह माँगो, कि राम चौदह वर्षतक तापस-वेशसे वनवास करें—और दूसरा यह, कि भरतको राजगद्दी दी जाय। रामको चौदह वर्षतक राज्यसे दूर रखनेमें बड़ा काम निकलेगा। इतने अवसरमें भरत अपनी बुद्धिमानीसे सब सैन्य-सामन्तों और प्रजाजनोंको अपने वशमें कर लेंगे।" यह सुनतेही कैकेयी प्रसन्न हो गयीं और मन्थराके परामर्शके अनुसार कोप-भवनमें आ, गहने-कपड़े फेंक, मैली साड़ी पहन, कुत्सित वेश बनाकर ज़मीनपर पड़ रहीं।

नगरमें वैसाही आनन्द-आमोद चलता रहा। वही चहल-पहल, वही शोभा-सौन्दर्य, वही घर-घरमें रामके गुणोंका कीर्त्तन,—जहाँ देखो, वहीं अभिषेककीही चर्चा! परन्तु यह किसीने भी न

जाना, कि क्षुद्र मानवके मनोरथोंकी निस्सारता, उसके सारे सुख-सौभाग्यकी क्षणभङ्गुरता दिखलानेके लिये ईश्वरीय चक्र चल गया है और वह कुछही देरमें सबपर पाला डाल देगा! सच है, मनुष्य नहीं जानता, कि विधाताकी तनिकसी क्रूर दृष्टि उसकी गगन-स्पर्शी अभिलाषाओंको पलक मारते मिट्टीमें मिला देती है। परन्तु वह जानकर भी नहीं जानता, समझकर भी नहीं समझता। अबोध मनुष्यका मनही जो ठहरा! नहीं तो आनन्दके अवसरपर वह हँसता, और शोक-दुःख आ पड़नेपर रोता क्यों? जिसे हर्ष-विषाद नहीं व्यापते, वही देवता है—इसीसे हम जिसे इन गुणोंके प्रभावसे परे पाते हैं, उसे परमेश्वरका अवतार मानते हैं।

सभामें रामचन्द्रके राज्याभिषेकके विषयमें सबकी सम्मति स्थिर होतेही महाराज दशरथने शुभ कार्य्यमें विलम्ब करना अच्छा न समझ, उसी समय सारे प्रबन्ध ठीक करनेके लिये मन्त्रियोंको आज्ञा देदी, प्रजाने भी अपने अपने घर जाकर उत्सवकी तैयारियाँ करनी आरम्भ कर दी और यह निश्चय होगया, कि कलही यह मङ्गलमय कार्य्य हो जायगा। इधर धड़ल्लेसे तैयारी होने लगी, उधर रनिवासमें किसीको सवाद मिला, किसीको नही। राजा भी इन प्रबन्धोंमें व्यस्त होनेके कारण अन्तःपुरमें जाकर यह सवाद ठीक समयपर न सुना सके। कैकेयीके मनमें मन्थराकी बातें बैठ जानेका यह भी एक प्रधान कारण हो गया। उन्होंने सोचा, कि अवश्यही यह मेरी सौतकी कुटिल नीति है,

और वास्तवमें मुझे अन्धेरेमें रखकर यह काररवाई चुपचाप की जा रही है।

किन्तु राजा कैकेयीको बहुत मानते थे, इनके प्रति उनका प्यार सब रानियोंसे अधिक था। वे एक प्रकारसे इनके वशमें हो गये थे। अतएव, कौशल्या और सुमित्राके पास दूसरोंसे संवाद भिजवाकर, साँझ होनेपर जब समस्त राज-कर्मचारी और सामन्तगण अपने-अपने घर चले गये, तब महाराज स्वयं कैकेयीको हर्ष-संवाद देनेके लिये उनके महलोंमे पधारे। परन्तु जब उन्होंने उन्हें वहाँ न पाया और सुना, कि वे कोप-भवनमें पड़ी हुई हैं, तब तो उनके देवता कूच कर गये। अशुभकी आशंकासे उनका हृदय कम्पित होने लगा, पैर सीधे न पड़ने लगे। किसी-किसी तरह कोप-भवनमें गये। जातेही देखा, कि कैकेयीने बड़े मैले-कुचैले और पुराने वस्त्र पहन रखे हैं, गहने उतार फेंके हैं और भूमिपर पड़ी हुई क्रोधित सर्पिणीकी तरह फुफकार छोड़ रही हैं। यह दशा देख राजाको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने कहा,—"प्राणप्यारी! आज यह अमङ्गलवेश कैसा? क्या कारण है, जो तुम कोप-भवनमें आ बैठी हो? क्या किसीने तुम्हारा अपमान किया है? किसके दो सिर हुए हैं, जिसने तुम्हारे साथ छेड़छाड़ की है?" किन्तु कैकेयीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे पहलेकी तरह लम्बी साँस लेती और आँखें सजल किये सोयी रहीं।

अब तो राजासे न रहा गया; उन्होंने रानीका हाथ पकड़, बड़ी व्याकुलताके साथ कहा,—"प्यारी! तुम अपने मनकी बात

कहतीं क्यों नहीं? कहो, किस राजाको कङ्गाल कर दूँ? किस कङ्गालको राजा बना दूँ? तुम जानती हो, कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ। कहो, जो कुछ कहोगी, मैं उसे अभी पूरा करूँगा। प्राणप्रिये! मैं रामकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, कि तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैं सब कुछ कर सकता हूँ। कुछ सङ्कोच न करो, जो बात हो साफ़-साफ़ कह डालो—तुम्हारी बड़ीसे बड़ी माँग भी, मैं प्राण देकर पूरी करूँगा।"

यह सुन कैकेयीने वह कपटकोप त्याग दिया और हँसती हुई राजाके पास आकर बोलीं,—"आपने माँगनेको तो मुझसे न जाने कितनी बार कहा, पर कभी कुछ दिया-लिया भी है, या कोरी वाक्-चातुरीही जानते हैं? मेरे दो वर आपके पास न जाने कबके अमानत पड़े हुए हैं, उन्हें आपने आजतक नहीं पूरा किया।"

इस प्रकार कैकेयीका कोप कौतुकमें बदलते देख, राजाको बड़ीही प्रसन्नता हुई। उन्होंने रानीको अपने हृदयसे लगा लिया और बड़े प्यारसे कहा,—"तुम्हारी धरोहर मैं मारना नहीं चाहता। इतने दिन ये दोनों वर नहीं दिये गये, तो भलेही व्याजके दो और ले लो, परन्तु रामका कल राज्याभिषेक होगा और आज तुम्हारा यह रूप अच्छा नहीं लगता। प्रिये! तुम अवश्य इसी आनन्दके अवसरपर अपने ये दोनों वर माँग लो। मैं रघुवंशी हूँ; कहकर बात पलट जाना, मेरे कुलकी रीति नहीं है। तिसपर मैंने रामकी शपथ की है, अब इससे बढ़कर और क्या चाहती हो?"

सरलहृदय राजाने नहीं समझा, कि कैकेयीका यह भाव-

करनेका क्या मुझे यही फल मिलना चाहिये था? मेरे फूलते-फलते हुए हरे-भरे वृक्षको आज क्यों इस प्रकार समूल उखाड़ फेंकनेको तैयार हो गयीं? रामने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो तुम इस प्रकार उनके सर्वनाशके लिये उतारू हो गयी हो? अभी कलतक तो तुम्हारा उनपर बड़ा प्यार था, आज एकही दिनमें वह प्रेम-वात्सल्य कहाँ चला गया? कैकेयी! आज तुमने मुझे बड़े कुठौर मारा!"

यह कह राजा अबोध बच्चेकी नाईं रोने लगे। उन्होंने कैकेयीका हाथ पकड़ा, ठोड़ी पकड़ी, यहाँतक, कि पैर भी पकड़े, पर वे काहेको मानने लगीं? अपनी बातपर अड़ी रहीं। ऊपरसे कटेपर नोन छिड़कती हुई कहने लगीं,—"जब इतनी ममता थी, तब क्यों वचनपर दृढ़ रहनेकी डींग मारते थे? क्यों सत्य-सत्य चिल्ला रहे थे? कह दीजिये न, कि वर नहीं देते; बस, छुट्टी हो गयी। कोई आपसे बलपूर्व्वक तो ले नहीं लेगा? बात कहकर पूरी करनेवाले तो वे शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्रही थे, जिन्होंने प्राण दे दिये, पर बात न जाने दी। सारा संसार उनके समान थोड़ेही हो सकता है?"

कुबुद्धि-रूपी सानपर चढ़ी हुई कैकेयीकी इस वचन-रूपी तलवारने राजाके हृदयको दो-टुकड़े कर डाला। उन्होंने पागलकी तरह व्याकुल भावसे कहना आरम्भ किया,—"प्यारी कैकेयी! राम और भरत मेरे लिये समान हैं। आदमीको अपनी आँखें दोनोंही प्यारी होती हैं—एकका रहना और दूसरीका फूटना उसे कब सुहायेगा? वैसेही वे दोनों भाई मेरी दोनों आँखें हैं। तुम

परिवर्त्तन वैसाही है, जैसे भयानक अन्धड़-तूफ़ान आनेके पहले समुद्रकी परम शान्ति अथवा सर्वनाशके पहले मङ्गल-मूर्त्तिका आविर्भाव! जैसे मृगको मारनेके लिये व्याध सुरीले स्वरसे गीत गाता है, उसी प्रकार कैकेयीने, राजाके हृदयपर वज्र गिरानेके पहले, अपना स्वर कोमल और भाव मनोहर बना लिया। सर्वनाशकी इस मधुर मूर्त्तिको देख राजा भूल गये, इसीलिये इतनी बड़ी प्रतिज्ञाके बन्धनमें फँस गये।

करनेका क्या मुझे यही फल मिलना चाहिये था ? मेरे फूलते-फलते हुए हरे-भरे वृक्षको आज क्यों इस प्रकार समूल उखाड़ फेंकनेको तैयार हो गयीं ? रामने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो तुम इस प्रकार उनके सर्वनाशके लिये उतारू हो गयी हो ? अभी कलतक तो तुम्हारा उनपर बड़ा प्यार था, आज एकही दिनमें वह प्रेम-वात्सल्य कहाँ चला गया ? कैकेयी ! आज तुमने मुझे बड़े कुठौर मारा !"

यह कह राजा अबोध बच्चेकी नाईं रोने लगे। उन्होंने कैकेयीका हाथ पकड़ा, ठोड़ी पकड़ी, यहाँतक, कि पैर भी पकड़े, पर वे काहेको मानने लगीं ? अपनी बातपर अड़ी रहीं। ऊपरसे कटेपर नोन छिड़कती हुई कहने लगीं,—"जब इतनी ममता थी, तब क्यों वचनपर दृढ़ रहनेकी डींग मारते थे ? क्यों सत्य-सत्य चिल्ला रहे थे ? कह दीजिये न, कि वर नहीं देते; बस, छुट्टी हो गयी। कोई आपसे बलपूर्व्वक तो ले नहीं लेगा ? बात कहकर पूरी करनेवाले तो वे शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्रही थे, जिन्होंने प्राण दे दिये, पर बात न जाने दी। सारा संसार उनके समान थोड़ेही हो सकता है ?"

कुबुद्धि-रूपी सानपर चढ़ी हुई कैकेयीकी इस वचन-रूपी तलवारने राजाके हृदयको दो-टुकड़े कर डाला। उन्होंने पागलकी तरह व्याकुल भावसे कहना आरम्भ किया,—"प्यारी कैकेयी ! राम और भरत मेरे लिये समान हैं। आदमीको अपनी आँखें दोनोंही प्यारी होती हैं—एकका रहना और दूसरीका फूटना उसे कब सुहायेगा ? वैसेही वे दोनों भाई मेरी दोनों आँखें हैं। तुम

कहती हो, तो बड़े-छोटेका विचार त्यागकर, मैं भरतकोही राज्य दे डालूँगा, पर तुम रामके वन-वासवाले वरके स्थानमें और कुछ माँग लो। रामको राज्यका लोभ नहीं है, भरतपर उनकी प्रीति भी सबसे अधिक है, अतएव उन्हें अपने छोटे भाईके गद्दीपर बैठनेसे प्रसन्नताही होगी, अप्रसन्नता नहीं। पर वे मेरे नेत्रोंके सामने रहें, बस, मैं यही चाहता हूँ। तुम उन्हें साधारण प्रजाकी भाँति अयोध्यामें रहने दो।"

पर कैकेयी पक्के गुरुकी पढ़ायी हुई थीं। मन्थराकी कुटिल मन्त्रणासे तनिक भी इधर-उधर होना उन्हें कब स्वीकार होता? वे बार-बार राजाको अपने विष-बुझे बाणकेसे वचनों द्वारा व्यथित करने लगीं। जब सब तरहके उपाय करके राजा हार गये, तब "हा राम! हा राम!" कह मूर्च्छित हो गये।

जब-जब राजाकी मूर्च्छा टूटती, तब-तब वे आशाकी निर्बल डोरी पकड़कर उठनेकी चेष्टा करते—कैकेयीसे लाख-लाख तरहसे निहोरे करते, पर जब आशाका वह क्षीण तन्तु बात-की-बातमें टूट जाता, तब वे फिर मूर्च्छित हो जाते! इसी तरह सारी रात बीत गयी।

राजा प्रति दिन बड़े तड़के, कुछ रात रहतेही उठ, प्रातःकृत्य समाप्तकर, सूर्य्योदयके पहलेही सुमन्त्रको बुलाकर दिनभरका कार्य्यक्रम ठीक कर लेते थे। आज ऐसा आवश्यक और महत्त्वपूर्ण अवसर होनेपर भी राजा अबतक सोकर नहीं उठे, यह

सुन सुमन्त्र कुछ चिन्तित हुए—उन्होंने अन्त पुरमें जाकर राजाको सम्मान जनाते हुए पुछवाया, कि "अभीतक महाराजकी निद्रा क्यों नहीं टूटती ? उनके शरीरमें कोई व्याधि तो नहीं हुई ? महारानीका स्वास्थ्य तो ठीक है न ?" इसपर कैकेयीने कहला भेजा,—"महाराज रात-भर रामके राजतिलककी बात सोचते-विचारते हुए जगते रहे, भोरको उन्हें थोडी नींद आगयी है, इसीलिये अबतक उठ नहीं सके। तुम अभी जाकर रामचन्द्रको यहाँ भेज दो।"

सुमन्त्र चले गये और रामके पास यह सवाद भेज दिया। सूचना पातेही, राम अपने पिताके पास चले आये और वहाँका हाल देख, दु ख और आश्चर्य्यके साथ मातासे राजाकी मूर्च्छाका कारण पूछने लगे। कैकेयीने कहा,—

"राम ! तुम्हारे पिताने मुझे दो वर देने कहे थे, वेही मैंने आज इनसे माँगे हैं, परन्तु तुम्हारी सहायताके विना ये अपना वचन पूरा करनेमें असमर्थ हैं। यदि तुम चाहो, तो इनका यह कठिन क्लेश दूर हो सकता है।"

यह सुन रामचन्द्रने कहा,—"माता ! शीघ्र कहो, वह कौनसी बात है, जिसे पिताजी मेरी सहायता विना नहीं कर सकते ? तुम्हारे मुँहसे वचन निकलते न निकलते मैं उसे पूरा-कर डालूँगा। माता ! पिताकी आज्ञासे मैं कठिनसे कठिन काम करनेको भी सदा, सर्वदा, सहर्ष प्रस्तुत हूँ। वे यदि कहें, तो मैं अभी हलाहलका कटोरा हँसते-हँसते पी जाऊँ, अगाध समुद्रमें कूद पड़ूँ, सिंहकी माँदमें चला जाऊँ। मैं पिताके सत्यकी

रक्षाके लिये सब कुछ कर सकता हूँ। माता! विलम्ब न करो; उनकी जो कुछ इच्छा हो, शीघ्र कह सुनाओ।"

यह सुन, कैकेयीने कठोर हृदयसे सब बातें कह सुनायीं। सुनतेही रामने कहा,—"माँ! यह कौनसी बड़ी बात है? भाई भरत राज्य पावें, इसमें मुझे दुःख काहेका है, जो पिताजी इतने व्याकुल होते हैं? स्वयं राजा होनेसे मैं केवल अयोध्या-नरेशही कहलाता, परन्तु भरतके राज-सिंहासनपर बैठनेसे मैं अयोध्या-नरेशका बड़ा भाई कहलाऊँगा। यह तो मेरी गौरव-वृद्धिकीही बात है! इसके लिये सोच कैसा? रही वन-वासकी बात! सो ऋषि-मुनियोंके निरन्तर सहवासको तो मैं स्वर्गसे भी बढ़कर समझता हूँ। इतने दिनोंतक मुझे उनके सत्सङ्गका लाभ उठानेका अवसर प्राप्त होगा, इससे मेरी आत्मा कितनी सुखी होगी, सो क्या बतलाऊँ? इतनीसी बातके लिये पिताजी क्यों इतने दुःखी हो रहे हैं? वे मुँहसे बोलते क्यों नहीं? अच्छा, तुम्हारी बातको भी मैं उनकी बातसे कम नहीं समझता। लो, मैं अभी माता कौशल्या और सुमित्राको प्रणामकर तथा सीताको समझा-बुझाकर वनके लिये प्रस्थान करता हूँ।"

यह कह रामचन्द्र वहाँसे बाहर चले आये। राजा दशरथ अधखुले नेत्रोंसे रामचन्द्रका वह चन्द्र-वदन देख और उदार वचन सुन रहे थे, पर मारे दुःखके वे ऐसे विह्वल और अर्द्धमृत हो रहे थे, कि उनके मुँहसे एक बात भी नहीं निकली। रामचन्द्रके बाहर जातेही उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। फिर उन नेत्रोंने नयनाभिराम रामका कोटिकाम-ललाम रूप नहीं देखा!

उनके प्राण उसी दरिद्रकी भाँति छटपटाने लगे, जिसकी जन्मभरकी कमाई क्षण-भरमें लुट गयी हो। जिस बूढ़ेके सहारेकी लकड़ी कोई दुष्टात्मा छीन ले जाय, उनकी विकलताका अनुभव कुछ उसीका दुःखी हृदय कर सकता है! पुत्र-वत्सल राजाके नेत्रोंसे सौ-सौ धार छोड़कर आँसू गिरने लगे। उन्होंने रोते-रोते सारी पृथ्वी भिंगो दी।

कैकेयीके भवनसे बाहर आनेपर रामचन्द्रके मुखड़ेपर किसीने विषादकी एक पतली रेखा भी खिंची हुई नहीं पायी; किसीने नहीं जाना, कि अभी-अभी कैसा वज्रपात हो गया है! भला, जिस मुखमण्डलपर कल राज-तिलककी बात सुनकर प्रसन्नताकी झलक भी न दिखाई दी, उसपर वन-वासकी बात सुन चिन्ताकी छाया क्यों पड़ने लगी?

अपने हृदयकी इसी महत्ताके कारण, राम! तुम मर्यादा-पुरुषोत्तम, परमेश्वरके अवतार, माने जाते हो।

१

वहाँसे चलकर रामचन्द्र अपनी माता कौशल्याके पास पहुँचे। वे उस समय देव-पूजा कर रही थीं। पुत्रको आते देख, वे उठ खड़ी हुईं और उन्हें बड़े प्रेमसे पास बैठा, आशीर्वाद करती हुई कुशल पूछने लगीं। रामचन्द्रने क्षणभर सोचकर सारा हाल कह सुनाया। सिंहका गर्जन सुनकर डरी हुई हरिणीकी भाँति कौशल्या यह वज्र-समान वाणी सुनतेही जड़से उखड़ी हुई लताकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं। रामने उन्हें बहुतेरा समझाया और वन जानेकी आज्ञा माँगी। कौशल्या बड़े उच्चस्वरसे रोदन करने लगीं! उनका यह हृदय-विदारक रोना सुन दास-दासियोंकी भारी भीड़ इकट्ठी हो गयी और सब समाचार सुन लोग कैकेयीको भली-बुरी कहने लगे। कौशल्याने कहा,—"पुत्र! जब तुमने पितृ-वचन पालन करनेका पूरा सङ्कल्प करही लिया है, तब चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। मैं एक क्षण तुम्हें नयनोंकी ओट न कर सकूँगी। मेरे लाल! कहीं गाय अपने बछड़ेको छोड़कर रह सकती है?"

यह सुन रामचन्द्र बोले,—"माता! तुम सती-शिरोमणि, नीति-कुशला होकर ऐसी विकल क्यों होती हो? तुम्हारे आशी-

क्योंकि चौदह वर्ष सुख-पूर्वक बिताकर मैं फिर तुमसे आ मिलूँगा। तुम्हारा यहाँ रहना बहुतही आवश्यक है; क्योंकि पिताजीकी इस समय बड़ी क्षीण अवस्था है। उनकी सेवा करना तुम्हारा सबसे पहला धर्म्म है। जब कभी वे मेरी याद कर दुःखी हुआ करें, तब तुम्हीं उन्हें धीरज धराना और मेरे लिये आशीर्वाद करती रहना।"

इसी तरह वे माताको समझा-बुझा रहे थे, कि इसी समय कहींसे यह दुःसंवाद सुन व्याकुल हुई सीता वहाँ आ पहुँचीं। वे अभी सासके चरणोंमें सिर नवाकर बैठीही थीं, कि उन्हें देख कौशल्याके नेत्रोंसे चौधारे आँसू गिरने लगे। वे झट समझ गयीं, कि सीताका यहाँ आना किस निमित्त हुआ है! वे अच्छी तरह जानती थीं, कि यह पतिव्रता, आदर्श सती, स्नेहकी प्रतिमा —कभी अपने प्राण-प्यारेसे पृथक् नहीं रह सकती। यही सोच और सीताका यह सुकुमार शरीर देख, उनके दुःखरूपी नदीका बाँध टूट गया! यह देख सीताके नेत्रोंसे भी श्रावणकी जल-धाराकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और दोनों स्नेहकी नदियोंके सङ्गममें रामचन्द्रका सरल हृदय डूब गया; परन्तु वे अपनी मर्यादापर स्थिर रहे। उन्होंने कहा,—

"प्रिये! तुम्हें ज्ञात है, कि पिताकी आज्ञासे मैं आजही वनको जाता हूँ। पिताकी आज्ञा है, उसका पालन तो करनाही होगा? तुम मेरी धर्म-पत्नी हो—मेरे धर्म्मकी रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम यहाँ रहकर मेरे माता-पिताकी सेवा करना, जिसमें वे कभी मेरा अभाव अनुभव न करें और जब कभी वे मेरा

स्मरण कर दुःखित हों, तब प्राचीन ग्रन्थोंसे महात्माओं और महीयसी महिलाओंके पुण्य-चरित सुनाकर तुम उन्हें धीरज देना। मेरे पीछे मेरे भाइयोंसे सदा स्नेहका व्यवहार करना, उन्हें कभी कड़ी बात न कहना, उन्हें सदा सब तरहसे प्रसन्न रखना। समझीं? पिताका वचन पूराकर मैं तुमसे फिर आ मिलूँगा।"

रामको इस प्रकार अपने मनके अनुकूल बातें करते देख, कौशल्याने कहा,—"हे पुत्र! यदि सीता घरमें रहेगी, तो तुम्हारे वियोगका दुःख मैं किसी न किसी तरह पत्थरकीसी छाती बनाकर सहनकर लूँगी। पर मैं देखती हूँ, कि यह तो तुम्हारे साथ जानेको तैयार होकर आयी है। हाय! जिसके पिता मिथिलाके महीपाल—बड़े-बड़े राजाओंमें श्रेष्ठ हैं; जिसके ससुर सूर्य्यवंशियोंमें सूर्य्यके समान हैं; जिसके पति रघुकुल-रूपी कुमुदवनके चन्द्रमाकी भाँति हैं, वही सीता क्या वनको जायगी? मान-सरोवरकी सुभ्र पानकर पली हुई राजहंसिनी क्या गढ़य्यामें रहेगी? यह सञ्जीवनी-लता क्या विषकी वाटिकामें विराजेगी? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। जो सीता कभी पृथ्वीपर पैर नहीं देती, वह वनमें क्योंकर पाँव-प्यादे भ्रमण कर सकेगी? वनमें रहने-योग्य वे तापस-कुमारियाँही हैं, जिनके लिये भोग-विलास सपनेकीसी वस्तु है, अथवा वे कोल-किरात-किशोरियाँ हैं, जिन्हें ब्रह्माने वहीं रहनेके लिये पैदा किया है। पुत्र! तुम क्या कहते हो? तुम जो कहो, वह मैं जानकीसे कह दूँ।"

यह सुन रामचन्द्रने सीतासे कहा,—"राजकुमारी! यदि सचमुच तुम वन जानेके विचारसे आयी हो, तो इससे मैं जितना

सुखी हुआ हूँ, उससे अधिक दुःखी होऊँगा। .. तुम अपने मनमें यह कदापि न जानना, कि मैं किसी और आशयसे ये बातें कह रहा हूँ। नहीं,—मैं जो कुछ कहूँगा, वह इसी उद्देश्यसे, जिसमें मेरा और तुम्हारा दोनोंका भला हो। तुम मेरी बात मानो, घरपर-ही रहो और सास-ससुरकी सेवा करो, क्योंकि इससे बढ़कर तुम्हारे लिये और कोई धर्म्म नहीं है। दिन जाते देर नहीं लगती। ये दिन भी चले जायँगे, रहेंगे नहीं। मैं पिताका वचन पालनकर फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगा। यदि तुम प्रेम-वश हठ करोगी, तो क्लेश पाओगी। वनमें भाँति-भाँतिके कष्ट उठाने पड़ते हैं। एक तो कुश-काँटोंके मारे राह चलना कठिन है, दूसरे बड़े-बड़े पर्वतों, नदी-नालों और गुफाओंको पारकर जाना पड़ेगा। जब तुम चित्रमें लिखे हुए सिंह-व्याघ्रोंको देखकर डर जाती हो तब वहाँ तो बड़े-बड़े सिंह, व्याघ्र, भालू, भेड़िये दिन-रात फिरते और भयङ्कर गर्जन किया करते हैं, जिसे सुन बड़े बड़े वीर पुरुषोंका भी धीरज छूट जाता है। सीते! तुमसी सरला, सुकोमला और ऐश्वर्य्यकी गोदमें पली हुई नारीका काम जङ्गलोंमें रहनेका नहीं है। मान-सरोवरमें विहार करनेवाली हंसिनी खारी समुद्रमें रहकर प्राणधारण नहीं कर सकती; नयी-नयी आम्र-मञ्जरियोंमें विलास करनेवाली कोकिला कँटीले करीलके वनमें शोभा नहीं पाती।"

तो बातही न्यारी है, पुरुषका कलेजा भी काँप जाता, परन्तु सीताको वे कष्ट पति विरहके कष्टसे कही कम मालूम हुए। उन्होंने पहले तो सासके सामने सङ्कोचके मारे कुछ नहीं कहा था, केवल उनके नयन-जलसेही उनके हृदयके भावों और सङ्कल्पोंका परिचय मिलता था, परन्तु रामचन्द्रकी यह लम्बी-चौड़ी वक्तृता सुन, उनसे चुप न रहा गया। उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह कवि कुल शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीके अमर शब्दोंमेंही सुनिये,—हमारी इस निर्बल लेखनीमें वह शक्ति और सहृदयता कहाँ, जो सीताके भावोंका चित्र उस उत्तमताके साथ उतार सके, जो गुसाईं जीकी अमृतमयी लेखनीमें वर्त्तमान है?—

प्राणनाथ करुणायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघु-कुल-कुमुद विधु सुरपुर नरक समान॥

मात पिता भगिनी प्रिय भाई ॥ प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई ॥ सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ! नेह अरु नाते ॥ पिय बिनु तियहिं तरनिते ताते॥
तन धन धाम धरनि पुर-राजू ॥ पति विहीन सब शोक-समाजू॥
भोग रोग सम भूषण भारू ॥ यम-यातना सरिस संसारू॥
प्राणनाथ! तुम बिनु जगमाहीं ॥ मोकहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी ॥ तैसहि नाथ! पुरुष बिनु नारी॥
नाथ! सकल सुख साथ तुम्हारे ॥ शरद विमल विधु-वदन निहारे॥

खगमृग परिजन नगरबन बलकल बसन दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम, पर्णशाल सुखमूल॥

वन-दुख नाथ! कहे बहुतेरे ॥ भय विषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु वियोग लवलेश समाना ॥ होहि न सब मिलि कृपा निधाना॥
मोहि मगु चलत न होइहि हारी ॥ छन छन चरण-सरोज निहारी॥

सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं ॐ मारग-जनित सकल श्रम हरिहौं ॥
पाँय पखारि बैठि तरछाहीं ॐ करिहौं बायु मुदित मनमाहीं ॥
श्रम-कन-सहित श्यामतनु देखे ॐ कहँ दुख रहहिं प्राणपति पेखे ? ॥
सम महि तृण तरुपल्लव डासी ॐ पायँ पलोटिहि सब निशि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही ॐ लागहिं ताप बयारि न मोही ॥
को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा ॐ सिंहबधुहिं जिमि शशक सियारा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बन योगू ॐ तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू ? ॥
अस जिय जानि सुजान-शिरोमनि ॐ लेइय संग मोहिं छाड़िय जनि ॥"

सीताके पतिप्रेमसे चुचुहाते हुए इन पवित्रता और दृढ़ता-भरे वचनोंके आगे रामकी सारी युक्तियाँ कट गयीं। वे समझ गये, कि यह प्राण दे देगी, पर मुझे छोड़कर एक दिन भी अकेली न रहेगी। अतएव, उन्होंने सीताको साथ ले जानेके लिये मातासे अनुमति माँगी। माताका रहा-सहा अवलम्ब भी कच्चे धागेकी भाँति टूट गया! वे पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और "हा राम! हा सीते!" कहकर मूर्च्छित हो गयीं। जब उन्हें कुछ चैतन्य हुआ, तब उनके चरणोंमें मस्तक नवा दोनों पति-पत्नीने विदा माँगी। कौशल्याकी छाती इस दारुण वियोगका स्मरणकर फटी जाती थी, तोभी राम-सीताको अपने-अपने धर्मोंपर आरूढ़ देख, उन्होंने आज्ञा दे दी और बार-बार दोनों लाड़लोंका आलिङ्गन करते हुए, आशीर्वाद और उपदेश देने लगीं।

इस महामन्त्रको अच्छी तरह समझ लिया है। अतएव अपनी सेवासे, यत्नसे, प्रेमसे सदा अपने पतिको प्रसन्न रखना, जिसमें प्यारे रामचन्द्रको वन-वासका क्लेश न व्यापे।"

सीताने सासके चरणोंको छूकर कहा,—"माता! मैंने शास्त्र-पुराणोंसे, पति-देव और आपके मुखसे वारम्वार पातिव्रत-धर्म्मका माहात्म्य सुना, समझा और उसका अनुशीलन किया है। माता! मेरे स्वामी साक्षात् ईश्वर हैं, उनके चरणोंकी दासी भली-भाँति जानती है, कि उन चरणोंका क्या महत्त्व है!"

माताकी आज्ञा पा, दोनों पति-पत्नीने उसी समय राजसी गहने-कपड़े उतार दिये और तपस्वियोंकी तरह चीर-वल्कल धारण कर लिये। यह वेश-परिवर्त्तन देख, उस दिन वज्रका हृदय भी पिघलकर पानी हो गया और आबाल-वृद्ध-वनिताके नेत्रोंके नीरने अयोध्यामें नयी सरयू बहा दी!

बात फैलते-फैलते सुमित्रानन्दन लक्ष्मणके कानोंमें भी पहुँची। प्राणोंसे भी प्रिय भाई और भाभीके वन जानेकी बात सुनतेही वे शोकसे विह्वल हो, उनके पास आये और रोते-रोते साथ चलनेके लिये प्रार्थना करने लगे। रामने उन्हें लाख समझाया, कि "तुम्हारे चले जानेसे अयोध्या सूनी हो जायगी, क्योंकि पिता बीमारसे हो रहे हैं और भरत-शत्रुघ्न मामाके घर गये हैं। ऐसी दशामें तुम भी हमारे साथ चले चलोगे, तो यहाँका काम कैसे चलेगा?" पर लक्ष्मणने एक न सुनी।

आजतक जिन्हें एक दिनके लिये भी आँखोंकी ओट न होने दिया, सदा जिनकी सेवामें जीवन बिताया, उन्हें वे चौदह वर्षोंके लिये क्योंकर छोड़ सकते थे? लक्ष्मणका यह प्रबल अनुराग देख, रामचन्द्रने कहा,—"जब तुम नहींही मानते, तब जाओ, अपनी मातासे आज्ञा ले आओ।"

लक्ष्मण उसी समय माताके पास पहुँचे और समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। उनके मुँहसे यह सारा हाल सुन सुमित्राको दुःख तो बड़ा भारी हुआ, परन्तु सचमुच वे "वीर माता" थीं—वे स्वयं भी वीराङ्गना थीं और उनका पुत्र भी वीरपुरुष था। अतएव यह नाम उनके सम्बन्धमें बिलकुल सार्थक हो गया था। पुत्रके इस भ्रातृ-प्रेमको देख, वे ऐसी कुछ मुग्ध हुईं, कि उन्होंने सारे वात्सल्य और करुणाके भावोंको हृदयसे निकाल फेंका और पुत्रको हृदयसे लगाकर बोलीं,—

"रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात! यथासुखम्॥"

अर्थात्—"प्यारे पुत्र! आजसे तुम रामकोही पिता, सीताकोही माता और वनकोही अयोध्या समझो। मैं आज्ञा देती हूँ, कि तुम आनन्दके साथ उनके सङ्ग चले जाओ।"

पाठक-पाठिकाओं! देखा, आपने? सब विमाताएँ कैकेयी जैसी नहीं होतीं। कितनीही ऐसी उदार सुमित्राएँ आज—इन गये-बीते दिनोंमें—भी भारतके किसी-किसी गृहमें दिखाई पड़ती हैं, जो अपने पेटके जायेसे बढ़कर सौतकी सन्तानका लाड़-

प्यार करती हैं और संसारको सुमित्रा * तथा कौशल्याका स्मरण कराती हैं।

तदनन्तर राम, सीता और लक्ष्मण तीनोंने एक-एक कर सबसे विदा ली। सुमन्त्रने रथ तैयार कर रखा था, उसीपर तीनों जने सवार हुए। अयोध्याकी सारी प्रजा हाहाकार कर उठी। सबके सब—क्या वृद्ध, क्या बालक—रथके साथ-साथ दौड़ते हुए पीछे-पीछे चले। रामचन्द्रने उन्हें कितनाही लौटनेके लिये कहा, पर वे न लौटे। अपनी प्रजाका अपने ऊपर यह प्रेम देख, रामके साहसी हृदयमें भी करुणा उमड़ आयी। वे अपने नेत्रोंके आँसू न रोक सके। उन्होंने सुमन्त्रको शीघ्रतासे रथ हाँकनेके लिये कहा, क्योंकि यह करुण-दृश्य—प्रजाका यह हृदय-विदारक हाहाकार—उनसे देखा नहीं जाता था। जब वे सब लोग रथके साथ दौड़ते-दौड़ते थक गये, तब एक जगह खड़े हो, ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगे। यह देख राम और भी व्याकुल हुए और तीनों जने रथसे नीचे उतरकर पैदलही चलने लगे। इस प्रकार सन्ध्या होते-होते अयोध्या-नगरी उनकी आँखोंकी ओटहो गयी।

---

* यदि आप सुमित्राकी सहृदयता और वीरताका यथेष्ट परिचय पाना और साथही खड़ी बोलीमें वीर-रसके काव्यका अनोखा स्वाद लेना चाहते हों, तो हमारे यहाँसे "वीर-पञ्चरत्न" नामक सचित्र और वृहत् पुस्तक मँगा देखिये। इसमें सुमित्रा तथा अन्य वीर-माताओं, वीर-बालकों और वीर-क्षत्राणियोंके २९ काव्यमय चरित दिये गये हैं। स्थान-स्थानपर सुन्दर इकरंगे और तिन-रंगे २१ चित्र पुस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं। मूल्य बिना जिल्दका २॥) सुनहरी जिल्दबँधीका ३) रु०

सीता-रामका वन-वास

साँझ होते-होते जब सब लोग तमसा-नदीके तीरपर आ पहुँचे, तब रामचन्द्रने कहा, कि हमारे वन-वासकी पहली रात यहीं व्यतीत होनी चाहिये। क्योंकि जब हम अयोध्याके बाहर हो गये, तब हमें कहीं भी विश्राम करनेमें हानि नहीं है।

बड़े भाईके ऐसे विचार सुन, लक्ष्मणने भाई और भाभीके लिये कोमल पत्तोंकी शय्या बनायी, जिसपर सीता सहित रामने विश्राम किया। सुमन्त्र और लक्ष्मण रातभर जागते रहे। सारे पुरवासी, जो उनके प्रेम-वश यहाँतक आ पहुँचे थे, थके-माँदे और दुःखी होनेके कारण शीघ्रही सो गये। उस रातको सबने उपवास किया; क्योंकि जब राम और सीतानेही कुछ नहीं खाया, तब और कौन खाता?

कालकी यह विचित्र गति देखिये! कलतक सोनेके पलङ्ग और पुष्पोंकी शय्यापर भी जिन्हें नींद नहीं आती थी, सौ-सौ सेवक-सेविकाएँ हर घड़ी जिनकी आज्ञाकी प्रतीक्षामें हाथ जोड़े सामने खड़ी रहती थीं, आज वेही निर्जन वनमें पत्तोंकी सेजपर सुख-पूर्वक सो रहे हैं! अयोध्यामें सुकुमारताकी मूर्त्ति सीता-का यह हाल था, कि "कोमल कमलके गुलाबनके दलके सु जात

प्यार करती हैं और संसारको सुमित्रा * तथा कौशल्याका स्मरण कराती हैं।

तदनन्तर राम, सीता और लक्ष्मण तीनोंने एक एक कर सबसे विदा ली। सुमन्त्रने रथ तैयार कर रखा था, उसीपर तीनों जने सवार हुए। अयोध्याकी सारी प्रजा हाहाकार कर उठी। सबके सब—क्या वृद्ध, क्या बालक—रथके साथ-साथ दौड़ते हुए पीछे-पीछे चले। रामचन्द्रने उन्हें कितनाही लौटनेके लिये कहा, पर वे न लौटे। अपनी प्रजाका अपने ऊपर यह प्रेम देख, रामके साहसी हृदयमें भी करुणा उमड़ आयी। वे अपने नेत्रोंके आँसू न रोक सके। उन्होंने सुमन्त्रको शीघ्रतासे रथ हाँकने के लिये कहा, क्योंकि वह करुण दृश्य—प्रजाका वह हृदय विदारक हाहाकार—उनसे देखा नहीं जाता था। जब वे सब लोग रथके साथ दौड़ते-दौड़ते थक गये, तब एक जगह खड़े हो, ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगे। यह देख राम और भी व्याकुल हुए और तीनों जने रथसे नीचे उतरकर पैदलही चलने लगे। इस प्रकार सन्ध्या होते-होते अयोध्या-नगरी उनकी आँखोंकी ओट हो गयी।

---

* यदि आप सुमित्राकी सहृदयता और वीरताका यथेष्ट परिचय पाना और साथही खड़ी बोलीमें वीर-रसके काव्यका अनोखा स्वाद लेना चाहते हों, तो हमारे यहाँसे "वीर-पञ्चरत्न" नामक सचित्र और वृहद् पुस्तक मँगा देखिये। इसमें सुमित्रा तथा अन्य वीर-माताओं, वीर-बालाओं और वीर क्षत्राणियोंके २९ काव्यमय चरित दिये गये हैं। स्थान-स्थानपर सुन्दर इकरंगे और तिन रंगे २१ चित्र पुस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं। मूल्य बिना जिल्दका २॥) सुनहरी जिल्दबँधीका ३) रु०

सीता-रामका वन-वास

(१)

साँझ होते-होते जब सब लोग तमसा-नदीके तीरपर आ पहुँचे, तब रामचन्द्रने कहा, कि हमारे वन-वासकी पहली रात यहीं व्यतीत होनी चाहिये। क्योंकि जब हम अयोध्याके बाहर हो गये, तब हमें कहीं भी विश्राम करनेमें हानि नहीं है।

बड़े भाईके ऐसे विचार सुन, लक्ष्मणने भाई और भाभीके लिये कोमल पत्तोंकी शय्या बनायी, जिसपर सीता सहित रामने विश्राम किया। सुमन्त्र और लक्ष्मण रातभर जागते रहे। सारे पुरवासी, जो उनके प्रेम-वश यहाँतक आ पहुँचे थे, थके-माँदे और दुःखी होनेके कारण शीघ्रही सो गये। उस रातको सबने उपवास किया; क्योंकि जब राम और सीतानेही कुछ नहीं खाया, तब और कौन खाता ?

कालकी यह विचित्र गति देखिये! कलतक सोनेके पलङ्ग और पुष्पोंकी शय्यापर भी जिन्हें नींद नहीं आती थी, सौ-सौ सेवक-सेविकाएँ हर घड़ी जिनकी आज्ञाकी प्रतीक्षामें हाथ जोड़े सामने खड़ी रहती थीं, आज वेही निर्जन वनमें पत्तोंकी सेजपर सुख-पूर्वक सो रहे हैं! अयोध्यामें सुकुमारताकी मूर्त्ति सीता-का यह हाल था, कि "कोमल कमलके गुलाबनके दलके सु जात

गड़ि पाँयन विछौना मखमलके ;" परन्तु आज इस खर-पातकी सेजपर पीठ देते भी उन्हें तनिक वेदना नहीं होती। रामचन्द्रके साथ उनकी ऐसी एकाग्रता थी, कि वे उन्हें देखकर अपने आपको भूल जाती थीं। जैसे नदियाँ सागरमें मिलकर उसके साथ एक हो जाती हैं, उनका अलग रूप नहीं रह जाता, सच्ची पति-व्रताएँ भी अपना जीवन उसी प्रकार स्वामीके साथ एक कर देती हैं। स्वामीका दुःख-सुखही उनका दुःख-सुख है, स्वामीका चन्द्रमुख-दर्शनही उनके प्राणोंकी सबसे प्रिय सामग्री है। उन्हें अपने तुच्छ शरीरके सुख-दुःखकी चिन्ता नहीं व्यापती। सचही सीताने कहा था,—"नाथ ! तुम्हारे नयन-सुखकर श्यामशरीरको देखकर मेरे दुःख न जाने कहाँ भाग जायेंगे, तुम मुझे साथ ले चलनेमें तनिक भी न हिचकिचाओ।" सीताने पहलीही रातको यह दिखला दिया, कि वास्तवमें उन्होंने जो कुछ कहा था, वह सोलहो आने ठीक था। धन्य सीते! धन्य तुम्हारी स्वामि-भक्ति !!

(२)

कुछ रात रहतेही रामकी निद्रा भङ्ग हुई। उन्होंने देखा, कि अभीतक सब लोग सोही रहे हैं। यह देख, उन्होंने सुमन्त्रसे कहा, कि शीघ्रही रथको भगा ले चलो, नहीं तो हम लोगोंके पीछे-पीछे ये लोग न जानें कहाँतक जायेंगे और कितने क्लेश उठायेंगे। सुमन्त्रने वैसाही किया। रथ बड़ी तेज़ीसे हाँक दिया गया और वे कुछही देरमें निषादोंके राजा गुहकी राजधानी शृङ्गवेरपुरमें आ

पहुँचे। निषादोंका राजा रामचन्द्रका लड़कपनका मित्र था। उसने बड़ेही हर्षसे आकर इनका स्वागत किया, पर जब उसने सब समाचार सुने तब शोकसे अधीर होगया। उस दिन वे लोग वहीं रहे। गुहने वार-वार विनती की, कि महाराज! यह भी वनही है, आप चौदह वर्षतक यहीं रहें, हमलोग आपके दर्शनोंसे कृतार्थ होते रहेंगे और 'ईंधन-पात किरात-मिताई' करते रहेंगे; परन्तु रामचन्द्रने एक न मानी; क्योंकि वे जानते थे, कि "विपति परैं पै द्वार मित्रके न जाइये।" लाचार गुहने दूसरे दिन इनके लिये एक सुन्दर नाव गङ्गाके उस पार जानेके लिये मँगवायी।

अब सुमन्त्रके विदा होनेकी भी बारी आयी। अयोध्याके अन्य अधिवासियोंके सौभाग्यका अन्त तो कभीका हो गया, परन्तु सुमन्त्रका भाग्य अबतक जगा था, जो वे अबतक इन त्रिदेवोंके साथ थे, पर अब उनका सौभाग्य भी सोने चला। रामचन्द्रने कहा, "सुमन्त्र! अब तुम भी जाओ। हमें यहाँतक रथकी आवश्यकता थी, अब हम पैदलही चलेंगे। जाकर पिता-माताओंसे हमलोगोंके प्रणाम कहना और मामाके यहाँसे जब भरत-शत्रुघ्न आवें तब उनसे हमलोगोंके यथोचित प्रणामाशीर्व्वाद कह देना। सारी प्रजाको धीरज धराना और कहना, कि वे भरतमें भक्ति रखते हुए हमलोगोंको कभी-कभी याद करते रहेंगे।"

यह सुन सुमन्त्र फूट-फूटकर रोने लगे। रामचन्द्रने उन्हें धैर्य्य दिया और बार-बार आलिङ्गन कर प्रेम-पूर्वक विदा किया। वे शून्य-नेत्र, शून्य-प्राण होकर शून्य अयोध्या-नगरीमें लौट आये।

गुहने अपने देव-तुल्य अतिथियोंके पैर प्रेमसे धोकर उनको नावपर चढ़ाकर उस पार पहुँचा दिया। दो दिन लगातार चलते रहनेके बाद वे तीर्थोंके राजा, प्रयागमें आ पहुँचे। पासही मुनिवर भरद्वाजका आश्रम था। मुनिके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे वे उधरही चल पड़े। मुनिने ज्योंही उनको आते देखा त्योंही दौड़े हुए आये और उन्हें बड़े आदरसे अपने आश्रममें ले गये (कं कं

जिस समय इन तीनों व्यक्तियोंने चित्रकूटपर आकर रहना
ारम्भ किया, उस समय चारों ओर वसन्त विराजमान हो गया।
लों और फलोंके भारसे वृक्ष-लताएँ झूमने लगीं। नाना जाति
ार भिन्न-भिन्न सुगन्धोंवाले फूलोंके सुवाससे सारा वायुमण्डल
ामोदित होने लगा। वृक्षोंकी सघन श्रेणी; झरनोंका वह
नोहर कलरव करते हुए झरना; सरोवरमें खिले हुए कमलोंकी
ह प्यारी शोभा; वृक्षोंके आश्रयसे फैली हुई लताओंकी वह
ुन्दर श्री; कोयल, मोर, चकोर, चातक, चक्रवाक, चण्डूल
ादि चिड़ियोंका वह चहकना; हिरनके बच्चोंकी वह उछल-
ूद देख-देखकर नये आनेवालोंका हृदय आनन्दसे भर उठा।
ीता अपने प्राणपतिके साथ-साथ घूम-घूमकर वनकी शोभा
खने और प्रसन्न होने लगीं। लक्ष्मण माता-पिताके समान अपने
ड़े भाई और उनकी स्त्रीकी सेवा करते हुए अपना जन्म सफल
रने लगे।

महाराज दशरथका प्रेम अपने पुत्रपर इतना था, कि वे इस
ियोगको अधिक कालतक सहन न कर सके। उस दिन वे
स व्याधिसे पीड़ित हो शय्यापर गिर पड़े, उसने उनको
िर उठने नहीं दिया। रामके निर्वासनके ठीक छठे दिन रातको
नकी प्राणवायु राम-राम रटते-रटते निकल गयी। उनकी

मृत्यु तो उसी दिन हो चुकी थी, जिस दिन रामसे वे अलग हुए; पर कहने-सुननेको अभीतक दम बोल रहा था, आज वह भी छूट गया। पुत्रस्नेहके कारण उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये, पर मृत्युके भयसे अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं की। अपनी बातके ऐसे धनी, प्रतिज्ञाके ऐसे वीर, पृथ्वीमें कदाचित्‌ही उत्पन्न होते हैं!

अब मन्त्रियोंको यह चिन्ता होने लगी, कि राजाका अन्तिम संस्कार कौन करे? चारोंमेंसे कोई पुत्र तो इस समय अयोध्यामें नहीं रहा! राजाका शरीर कुछ रासायनिक द्रव्योंसे

गुरु आदि किसीका कहना, भरतने न माना। उनके प्राण बड़े भाईके दर्शनोंके बिना व्याकुल हो रहे थे।

यथासमय यह सारा समाज़ चित्रकूट पहुँचा। यह भीड़-भाड़ देख पहले तो लक्ष्मणको सन्देह हुआ, कि सेना-सामन्तोंको लेकर भरतका आना किसी मन्द अभिप्रायसेही हुआ है; परन्तु जब रामने समझाया, कि भरत जैसे भाईपर तुम्हारा ऐसा सन्देह करना भी पाप है, तब वे शान्त हुए, नहीं तो वे धनुर्बाण लेकर उन्हें मारनेकोही तैयार हो गये थे। उन्हें इस बातका पता नहीं था, कि उनके हृदयमें रामके प्रेमकी जो नदी उछलती है, उससे कहीं गम्भीर और मर्य्यादामें कितनाही बढ़ा हुआ प्रेम-सागर अलौकिक भ्रातृ-भक्त भरतके हृदयमें शान्त भावसे लहरा रहा है!

आतेही भरत और शत्रुघ्नने रामके चरणोंमें सिर नवा, सीताको प्रणाम किया और दोनों भाई बार-बार लक्ष्मणके गले लगे। उस समय पिताकी मृत्युका संवाद सुन और भाइयोंके इस अचानक मिलनसे करुणा, शोक और दुःखका जो समुद्र उमड़ पड़ा उसमें सब लोग डूबने-उतराने लगे। तदनन्तर भरतने बड़ी विनयके साथ कहा,—"भैया! अब आप अयोध्या लौट चलिये। मेरी माताने दुर्बुद्धिमें पड़कर अपना अकाल वैधव्य और हमलोगोंका वियोग कराया! अब इस विपत्तिका बोझ तभी हलका होगा, जब आप अयोध्यामें पुनः पांव देंगे। राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकार केवल आपको है, मैं कदापि उसपर पैर नहीं रख सकता। जहाँ स्वामीके चरण पड़ें, वहाँ सेवकका शिरही

शोभा पाता है। फिर मैं किस मुँहसे आपके आसनपर बैठूँगा?
न हो तो आप लौट जाइये। आपके बदले मैं ही वनवास करूँ
और पिताका प्रण पालन करूँगा। आपके न जानेसे अयोध्या
और भी अनाथ हो जायगी।"

परन्तु रामचन्द्र अपने प्रणसे तनिक भी विचलित नहीं हुए।
उन्होंने भरतको समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। बोले,—
"जिस सत्यकी रक्षाके लिये पिताने प्राण त्याग दिये, उसकी
रक्षा मैं अवश्य करूँगा, इसमें मैं कोई भी बाधा नहीं मान
सकता।"

लाचार भरत रामचन्द्रकी खड़ाऊँ लेकर सब साथियों
सहित खिन्न-मनसे लौट आये। आते समय उनका हृदय भाईके
वियोगसे इतना कातर हो रहा था, कि वे पथमें रह-रहकर ऐसे
विकल हो जाते थे, कि लोगोंको उनका सम्हालना कठिन हो
जाता था।

थे जैसी शान्ति और एकान्त चाहते थे, वह वहाँ मिलना दुर्लभ हो गया। नित्य भारी भीड़ इकट्ठी होने लगी। अतएव वे वहाँसे चल दिये और अत्रि-मुनिके आश्रममें पहुँचे। मुनिने उन्हे बड़े आदरसे अपने आश्रममें पधराया। सीताने बड़ी भक्तिसे उनकी पत्नी अनसूया देवीको प्रणाम किया। उस समय उन्होंने बड़े प्रेमसे आशीर्व्वाद देते हुए सीताको नारी-धर्म्मका जो उपदेश दिया था, वह यद्यपि सीतादेवीके लिये व्यर्थ था, क्योंकि वे तो साक्षात् पातिव्रतकी मूर्त्ति थीं, तोभी हमारी पाठिकाओंके लिये वे बड़े अनमोल हैं और उनका एक-एक अक्षर हृदयपर अङ्कित कर लेने योग्य है—अतएव हम उसे गुसाईंजीके शब्दोंमें ज्यों-का-त्यों नीचे दिये देते हैं। अनसूयाने कहा,—

"मातु पिता भ्राता हितकारी ❀ मित सुखप्रद सुनु राजकुमारी॥
अमितदानि भर्त्ता बैदेही ❀ अधमसो नारि जोसेवन तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी ❀ आपदकाल परखिये चारी॥
वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना ❀ अन्धबधिर क्रोधी अतिदीना॥
ऐसेहु पतिकर किए अपमाना ❀ नारि पाव यमपुर दुख नाना॥
एकै धर्म एक व्रत नेमा ❀ काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥
बिनुश्रम नारि परम गति लहई ❀ पतिव्रतधर्म छांड़ि छल गहई॥

सीते! यही हिन्दू-नारीका धर्म्म है। तुम इन धर्म-तत्त्वोंको भली भाँति जानती हो और अपने पतिके साथ छायाकी भाँति रहकर, यथार्थ सहधर्म्मिणीका काम कर रही हो। तुम्हारे इसी पुण्यबलसे तुम्हारा सदा कल्याण होगा और ये दुःखके दिन दूर हो जायेंगे। आनेवाली सन्तानें तुम्हारा नाम गौरव

सहित लेंगी और नारियाँ तुम्हारा अनुकरण कर यश और धर्म्म दोनों प्राप्त करेंगी।"

यह सुन सीताने कहा,—"देवी! आपने जो कुछ कहा, वह अक्षर-अक्षर सत्य है। मैंने बालकपनमें माता-पितासे यौवनमें पति और सासुओंसे, सदा सुना है और आज आपसे भ सुन रही हूँ, कि पतिही स्त्रीका सर्वस्व है। उसकी सेवाही नारी जन्मकी सार्थकता है। माता! जिसका पति कुरूप, दुश्चरित्र औ क्रोधी हो, उसे भी उसकी सदा आज्ञा माननी और टहल करन चाहिये, फिर जिसका पति गुणी, रूपवान्, संयमी और सच्चरि हो, उसका कहनाही क्या है? मैंने भी इसी लिये पति सेवाक तपस्या करनी आरम्भ की है। माँ! आशीर्वाद करें जिससे यह निष्ठा युग-युगान्तर, जन्म-जन्मान्तरमें भी ऐसीह

नहीं, हिंसा-घृणा नहीं, ईर्ष्या-द्वेष नहीं, उसे इस संसारमें किसका डर है ?

एक वनसे दूसरे वनमें पहुँचकर, ऋषि-मुनियोंसे मिलते हुए, वे लोग दिन-पर-दिन बड़े आनन्दसे बिताने लगे। किन्तु एक बार एक वनमें उन्हें बड़ी भारी विपत्तिका सामना करना पड़ा। उस दिन उन लोगोंके पास 'विराध' नामक एक दुष्ट राक्षस आया और दोनों भाइयोंके बीचसे सीताको कन्धेपर उठाकर ले भागा। यह देख लक्ष्मणने उसे बाणोंसे इतना घायल किया, कि उसने लाचार होकर सीताको नीचे उतार दिया और प्रबल वेगसे उनकी ओर दौड़ा। किन्तु उन दोनों भाइयोंने उसे वहीं ढेर कर दिया और विपत्तिके बादल पलभरमें उड़ गये। उसके मर जानेपर दोनों भाइयोंने उसके शवका भलीभाँति संस्कार कर अपने बड़प्पनका परिचय दिया। यद्यपि सीता इस घटनाके कारण बहुत भयभीत हुईं तथापि उन्होंने अपने मनको बहुत धीरज दिया और स्वामीके सहवासमें सब शङ्काएँ, सारे सन्देह और समस्त भय भूल गयीं।

यहाँका रहना भयसे भरा हुआ देख, वे लोग किसी शान्ति-दायक स्थानकी खोजमें चल पड़े। जाते-जाते वे लोग शरभङ्ग-ऋषिके आश्रममें पहुँचे। वहाँ उनका बड़ा आदर-सम्मान हुआ। तब रामचन्द्रजीके यह पूछनेपर, कि आस-पासमें कोई शान्तिपूर्ण स्थान है कि नहीं, शरभङ्ग-ऋषिने उन्हें अगस्त्य-ऋषिके चेले सुतीक्ष्ण-मुनिके आश्रममें जानेकी सम्मति दी। वे लोग वहाँसे चलनेवालेही थे, कि शरभङ्ग-ऋषिका शरीर छूट गया और वे

कल-कल शब्द करती हुई निरन्तर बह रही थी। उसका मीठा और स्वादिष्ट जल पीनेके साथही अमृतके समान प्राणोंमें नयी शक्तिसी भर देता था। उसके स्वच्छ सलिलमें हंस, सारस, चक्रवाक आदि जलचर पक्षी सदा क्रीडा करते हुए दिखलाई पडते थे। किनारे-किनारे वृक्षोंकी सघन श्रेणी खडी थी, जिसपर विहार करनेवाली कोयलोंकी कुहु-कुहु, पपीहोंकी पी-पी और कलापी-कलापिनियोंकी * केका ध्वनि सुनकर प्राणोंको अकथनीय आनन्द प्राप्त होता था। पासही पर्वत पहरेदारकी तरह सिर ऊँचा उठाये खडा था। उस स्थानकी मनोहर शोभाने सचमुच उन लोगोंका मन हर लिया। सीताको वह स्थान बहुत ही प्रिय विदित हुआ। उनकी इच्छा वहीं ठहरनेकी देख, रामचन्द्रने लक्ष्मणको एक कुटी बनानेकी आज्ञा दी और कुछ दिन वहीं ठहरनेका निश्चय कर लिया।

बात की बातमें लक्ष्मणने पर्णशाला तैयार कर ली और वे लोग आनन्दसे उसमें रहने लगे। पति पत्नी और भाई भाईमें कभी शास्त्र और धर्मके रहस्योंकी चर्चा छिडती और कभी ससारमें मनुष्यजीवनके कर्त्तव्योंपर मधुर वार्त्तालाप होते। लक्ष्मणने अपनी सेवा और आज्ञाकारितासे अपने बड़े भाई और भाभीके मनमें क्षणभरके लिये भी चिन्ता और क्लेशको स्थान न पाने दिया। इधर स्वामीकी बात बातमें अपनी अलौकिक अनुकूलता, सदा, सब समय, स्वामीका मनोरञ्जन करनेकी चेष्टा और देवर तो देवर, वनके पशुपक्षियोंपर भी हार्दिक अनुराग

---

* 'कलापी' मोर और 'केका' उसकी बोलीको कहते हैं।

दिखलाकर, सीता रामचन्द्रके हृदयमें आनन्द और प्रेमकी धारा बहाये देती थीं। भला ऐसी सहधर्म्मिणी, सुख-दुःखकी सङ्गिनी, छाया छोड़कर भी अलग न होनेवाली स्त्री तथा प्यारा आज्ञाकारी भाई पाकर कौन नहीं अपने भाग्यको सराहेगा? उसे वनका वास काहेको अखरने लगा? राज्य नहीं था, अपना गाँव-नगर नहीं था, संसारके सुखोंके साधन नहीं थे, परन्तु जिन दो स्नेही हृदयोंके ऊपर रामचन्द्रका अखण्ड साम्राज्य था, उसके आगे त्रिलोकीका राज्य क्या वस्तु है?

*

एक दिन ये तीनों मूर्त्तियाँ सानन्द अपने आश्रममें बैठी हुई थीं, कि इसी समय कहींसे शूर्पणखा नामकी राक्षसी इनके पास आ पहुँची। आतेही दोनों भाइयोंकी अनुपम सुन्दरता देख, उसके मनमें पापकी प्रबल वासना पैदा हो गयी। उसने झटपट रामके पास आ कहा,—"देखो, आजतक मैंने विवाह नहीं किया, क्योंकि मेरे योग्य कोई अच्छा वर मिलाही नहीं। परमात्माकी दयासे तुम आज मिल गये हो। तुममें मैं उन सारे गुणोंको पाती हूँ, जिनका होना मैं अपने पतिके लिये परम आवश्यक समझती थी। बड़े भाग्यसे भगवान्‌ने यह जोड़ी मिलायी है, अतएव चलो, मेरे साथ विवाह कर लो।"

यह सुन रामने उसे बड़ा दुतकारा और हँसते हुए कहा,—"मेरे तो एक स्त्री हैही, मैं क्यों दूसरी स्त्रीकी इच्छा करूँ? हाँ, वह मेरा छोटा भाई है, उससे पूछ, यदि उसकी इच्छा हो तो वह तेरे साथ विवाह कर लेगा।" यह सुन ज्योंही उसने लक्ष्मणके पास आकर अपनी पाप-भरी इच्छा प्रकट की, त्योंही वे उसे मारने दौड़े; परन्तु जब रामने कहा, कि स्त्रीका वध करना शास्त्रोंमें बड़ा पाप माना है, तब उन्होंने केवल उसके नाक-कान काट लिये। तत्क्षण उसके नाक-कानसे रुधिरकी धारा बहने लगी और वह रोती हुई वहाँसे खर-दूषण नामक अपने भाइयोंके पास जाकर अपना दुखड़ा सुनाने लगी।

अपनी बहनकी यह दुर्दशा देख, खर-दूषणको बड़ा क्रोध

दिखलाकर, सीता रामचन्द्रके हृदयमें आनन्द और प्रेमकी धारा बहाये देती थीं। भला ऐसी सहधर्म्मिणी, सुख-दुःखकी सङ्गिनी, छाया छोड़कर भी अलग न होनेवाली स्त्री तथा प्यारा आज्ञाकारी भाई पाकर कौन नहीं अपने भाग्यको सराहेगा ? उसे वनका वास काहेको अखरने लगा ? राज्य नहीं था, अपना गाँव-नगर नहीं था, संसारके सुखोंके साधन नहीं थे, परन्तु जिन दो स्नेही हृदयोंके ऊपर रामचन्द्रका अखण्ड साम्राज्य था, उसके आगे त्रिलोकीका राज्य क्या वस्तु है ?

इधर सीतादेवी सोचतीं,—"पञ्चवटीका यह पुण्य प्रदेश, प्राणोंसे भी प्रिय पति-परमेश्वरकी छायामें निवास, पुत्र-समान वात्सल्यके भाजन छोटे देवरकी सेवा-सहायता और सदा हाथ बाँधे आज्ञाकी प्रतीक्षामें टक लगाये देखते रहना, अयोध्याकी पटरानी होनेसे क्या इससे अधिक सुख होता ? अयोध्याकी तो बातही न्यारी है, स्वर्गमें भी यह आनन्द दुर्लभ है।"

इसी तरह सुखसे दिन बीत रहे थे, किन्तु कुटिल कालसे उनका यह सुख भी न देखा गया। एकाएक विपद्का सोता फूट पड़ा और वह सीताके अन्तिम जीवनतक एक प्रकारसे जारी रहा। किन्तु इन्हीं विपत्तियोंने सीताके चरित्रकी जो उत्कृष्टता, महत्ता और नारी-धर्मका गौरव प्रदर्शित किया, वह शायदही इनके बिना इतनी उज्ज्वलतासे चमकता हुआ दिखाई देता। सच है—

"सोना-सज्जन कसनको विपति-कसौटी कीन।"

८

एक दिन ये तीनों मूर्त्तियाँ सानन्द अपने आश्रममें बैठी हुई थीं, कि इसी समय कहींसे शूर्पणखा नामकी राक्षसी इनके पास आ पहुँची। आतेही दोनों भाइयोंकी अनुपम सुन्दरता देख, उसके मनमें पापकी प्रबल वासना पैदा हो गयी। उसने झटपट रामके पास आ कहा,—"देखो, आजतक मैंने विवाह नहीं किया, क्योंकि मेरे योग्य कोई अच्छा वर मिलाही नहीं। परमात्माकी दयासे तुम आज मिल गये हो। तुममें मैं उन सारे गुणोंको पाती हूँ, जिनका होना मैं अपने पतिके लिये परम आवश्यक समझती थी। बड़े भाग्यसे भगवान्‌ने यह जोड़ी मिलायी है, अतएव चलो, मेरे साथ विवाह कर लो।"

यह सुन रामने उसे बड़ा दुतकारा और हँसते हुए कहा,—"मेरे तो एक स्त्री हैही, मैं क्यों दूसरी स्त्रीकी इच्छा करूँ? हाँ, वह मेरा छोटा भाई है, उससे पूछ, यदि उसकी इच्छा हो तो वह तेरे साथ विवाह कर लेगा।" यह सुन ज्योंही उसने लक्ष्मणके पास आकर अपनी पाप-भरी इच्छा प्रकट की, त्योंही वे उसे मारने दौड़े; परन्तु जब रामने कहा, कि स्त्रीका वध करना शास्त्रोंमें बड़ा पाप माना है, तब उन्होंने केवल उसके नाक-कान काट लिये। तत्क्षण उसके नाक-कानसे रुधिरकी धारा बहने लगी और वह रोती हुई वहाँसे खर-दूषण नामक अपने भाइयोंके पास जाकर अपना दुखड़ा सुनाने लगी।

अपनी बहनकी यह दुर्दशा देख, खर-दूषणको बड़ा क्रोध

उत्पन्न हुआ और उन लोगोंने उसी क्षण उन वनवासियोंको मारनेके लिये चौदह सहस्र राक्षसोंकी सेना भेजी। सेना जब पास आ पहुँची, तब उसका वह समुद्रकासा अनन्त विस्तार देख, रामचन्द्रने लक्ष्मणको सीता-समेत एक पर्वतकी कन्दरामें जाकर छिप रहनेके लिये आज्ञा दी और आप धनुर्बाण लेकर उनका सामना करनेके लिये तैयार हो गये। फिर तो अकेले रामने अपनी अपूर्व्व बाण-विद्याके प्रभावसे राक्षसोंका ऐसा संहार किया, कि एक-एक करके वे सभी मारे गये, कोई जीता न लौटा।

संग्राम जीतकर जब रामचन्द्र सीता और लक्ष्मणके पास आये तब वे परस्पर बड़े आनन्दसे मिले। सीताके नेत्रोंमें तो आनन्दके आँसू उमड़ आये। भला ऐसे विकट शत्रुओंसे पाला पड़नेपर भी जिसका स्वामी हँसता-खेलता उसके पास आ जाय, उस वीर-पत्नीकी प्रसन्नताका क्या ठिकाना है!

सीता-हरण

१

खर-दूषण और उसके सङ्गी-साथियोंका संहार होगया, परन्तु इसीसे विपत्तिके बादल हट नहीं गये, वे धीरे-धीरे और भी घने होते गये। कुछही दिन बीतते-बीतते उन बादलोंने ऐसा वज्रपात किया, कि इन बेचारे शान्त तपस्वियोंकी सारी शान्ति नष्ट हो गयी।

जब खर-दूषण अपने समस्त हित-कुटुम्बियों और सैन्य-सामन्तोंके साथ मार डाले गये, तब निराश और दुःखित शूर्पणखा अपने बड़े भाई रावणके पास पहुँची और अपने नाक-कान काटे जाने और खर-दूषणके समूल संहार किये जानेका हाल रो-रोकर सुनाने लगी। सुनते-सुनते रावणका हृदय शोक, दुःख और क्रोधसे उन्मत्त हो उठा। वह मारे क्रोधके दांत पीसने और होंठ काटने लगा। रावणको इस तरह अपने अनुकूल होते देख, शूर्पणखाने और भी माया फैलायी—उसने अपने रोनेका स्वर और ऊँचा कर दिया। बहुत बार देखा गया है, कि सहस्रों उपदेशकों और करोड़ों व्याख्यानदाताओंके कथनका जहाँ कुछ भी प्रभाव नहीं होता,वहाँ स्त्रीका एक बार रो देना बड़ा काम कर जाता है। यहाँ भी ऐसाही हुआ। ज्यों-ज्यों शूर्पणखाका रोना बढ़ता गया,

आवेंगे, उधर मैं उनकी उस स्त्रीको ले भागूँगा।" पर लाख दुष्ट होते हुए भी मारीच आना-कानी करने और ऐसा कुकर्म करनेके लिये रावणको रोकने लगा। परन्तु जब रावणने उसे बहुत डराना-धमकाना शुरू किया, तब वह तैयार हो गया और ये दोनों दुष्ट क्रमशः पञ्चवटीके पास आ पहुँचे।

उस दिन तीनों वनवासी अपनी पर्णकुटीमें बैठे हुए तरह-तरहके मनोहर वार्त्तालापमें उलझे हुए थे। इसी समय थोड़ीही दूरपर उन्हें एक सुन्दर सोनेका हरिण चरता हुआ दिखाई दिया। सबसे पहले सीताकीही दृष्टि उसपर पड़ी। उसकी वह सोनेकीसी दपदपाती हुई कान्ति, वह उछल-कूद, वह दौड़-धूप देख सीताका मन मोहित हो गया। उन्होंने अपने स्वामीसे बड़े विनीत और कोमल वचनोंसे कहा,—"आर्यपुत्र! देखिये, यह कैसा सुन्दर सुनहला मृग है! इसे पकड़कर आश्रममें बाँध रखना चाहिये। यदि जीता न मिले, तो मराही ले आइये, क्योंकि इसकी छाल बड़ी सुन्दर होगी और उसपर बैठकर मुझे परम आनन्द होगा।"

रामको भी उस मृगका मनोहर रूप भा गया था, अतएव अपनी प्रियतमाके अनुरोधको सुनतेही वे झटपट तैयार हो गये। जाते-जाते उन्होंने लक्ष्मणसे कहा,—"भाई! मैं तो इस मृगका पीछा करता हूँ। देखना, तुम बड़ी सावधानीके साथ सीताकी रखवाली करना; क्योंकि वनमें तरह-तरहके मायावी राक्षस फिरा करते हैं। कहीं सीताको किसी तरहकी विपत्ति या कष्ट न

त्यों-त्यों रावणका रोष चढ़ता गया। इस तरह जब रावण क्रोधमें बिल्कुल अन्धा हो गया, तब शूर्पणखाने कहा,—"भैया! उन दुष्ट तपस्वी-कुमारोंके साथमें एक बड़ीही रूप-लावण्यवती स्त्री है—उसकी सुन्दरताके आगे कदाचित् स्वर्गकी देवियाँ भी पानी भरेंगी। तुम उसे लाकर अपनी रानी बनाओ, उसे उनसे बिछुड़ाओ, तभी मेरा मन शान्ति पायेगा। सच जानना, भाई! उस सुन्दरीके समान एक भी स्त्री तुम्हारे अन्तःपुरमें नहीं है। तुम जाकर देखो, देखतेही मोहित हो जाओगे। उसे लानेसे एक साथ कई काम हो जायेंगे। तुम्हें तो एक सुन्दरी नारी मिल जायगी, वैरियोंसे वैर सधेगा और वे बिना मारेही मर जायेंगे। परन्तु देखना, वहाँ बलका प्रयोग न करना; क्योंकि जिन्होंने खर-दूषण जैसे विख्यात वीरोंको बात-की-बातमें सैन्य-सहित मार गिराया, वे कोई साधारण जीव नहीं हैं। छलका प्रयोग करनाही सब तरहसे ठीक होगा; छलसेही उनके यहाँसे उस नारी-रत्नको उड़ा लाओ और मेरे मनकी लगी बुझाओ।"

शूर्पणखाकी बातें सुन पापी रावणके मनमें पापकी वासना जग पड़ी और सीताके रूप-लावण्यमें उसका मन डूब गया। उसने झटपट कहा,—"बहन! शान्त होओ। जिन दुष्टोंने तुम्हारी ऐसी दुर्दशा की है, वे अवश्य अपनी करनीका फल भोगेंगे।"

यह कह वह मारीचके पास गया और बोला,—"मित्र! तुम्हें एक काममें मेरी सहायता करनी होगी। मैं एक स्त्रीको हर लाना चाहता हूँ, तुम उसके पति और देवरको भ्रममें डालनेके लिये सुन्दर सुनहले मृगका रूप बनाओ। इधर वे तुम्हें मारने

आवेंगे, उधर मैं उनकी उस स्त्रीको ले भागूँगा।" पर लाख दुष्ट होते हुए भी मारीच आना-कानी करने और ऐसा कुकर्म्म करनेके लिये रावणको रोकने लगा। परन्तु जब रावणने उसे बहुत डराना-धमकाना शुरू किया, तब वह तैयार हो गया और ये दोनों दुष्ट क्रमशः पञ्चवटीके पास आ पहुँचे।

उस दिन तीनों वनवासी अपनी पर्णकुटीमें बैठे हुए तरह-तरहके मनोहर वार्त्तालापमें उलझे हुए थे। इसी समय थोड़ीही दूरपर उन्हें एक सुन्दर सोनेका हरिण चरता हुआ दिखाई दिया। सबसे पहले सीताकीही दृष्टि इसपर पड़ी। उसकी वह सोनेकीसी दपदपाती हुई कान्ति, वह उछल-कूद, वह दौड़-धूप देख सीताका मन मोहित हो गया। उन्होंने अपने स्वामीसे बड़े विनीत और कोमल वचनोंसे कहा,—"आर्यपुत्र! देखिये, यह कैसा सुन्दर सुनहला मृग है! इसे पकड़कर आश्रममें बाँध रखना चाहिये। यदि जीता न मिले, तो मराही ले आइये, क्योंकि इसकी छाल बड़ी सुन्दर होगी और उसपर बैठकर मुझे परम आनन्द होगा।"

रामको भी उस मृगका मनोहर रूप भा गया था, अतएव अपनी प्रियतमाके अनुरोधको सुननेही वे झटपट तैयार हो गये। जाते-जाते उन्होंने लक्ष्मणसे कहा,—"भाई! मैं तो इस मृगका पीछा करता हूँ। देखना, तुम बड़ी सावधानीके साथ सीताकी रखवाली करना; क्योंकि वनमें तरह-तरहके मायावी राक्षस फेरा करते हैं। कहीं सीताको किसी तरहकी विपत्ति या कष्ट न

उठाना पड़े ? विराधवाली बात तो तुम भूले न होगे ! उस बार हमलोग कैसे सङ्कटमें पड़ गये थे ?"

यह कह राम चले। मृग उन्हें देखतेही दौड़कर भागा। भागते-भागते वह उन्हें बहुत दूर ले गया। वह कभी दृष्टिके सामने आता और कभी बड़ी देरतक छिपा रह जाता था। इस तरह उसने रामको अच्छी तरह खेल खिलाया। उसका यह व्यवहार देख रामका माथा ठनका। वे सोचने लगे,—"यह तो कोई साधारण मृग नहीं मालूम होता। यह निश्चयही कोई राक्षसी माया है। पर चाहे राक्षस हो या वास्तविक मृग, मैं तो इसे अवश्यही मारूँगा।" यह सोच उन्होंने इस बार उसको देखतेही निशाना ताककर तीर छोड़ा, जिसके लगतेही वह दुष्ट "हा लक्ष्मण ! हा सीता !!" कहकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और तुरतही मर गया।

इधर माया-मृगका रूप धारण किये मारीच मारा गया, उधर उसके मरते समयके "हा लक्ष्मण ! हा सीता !!" आदि वचनोंने उस शून्य वनस्थलीमें गूँजते हुए पर्णशालामें बैठी हुई सीता और लक्ष्मणके प्राण कम्पित कर दिये। लक्ष्मण तो तुरतही सम्हल गये, क्योंकि उनको अपने विश्व-विजयी भ्राताके वीरत्वमें अटल विश्वास था; परन्तु सीताका कोमल स्त्री-हृदय दुःखसे अधीर हो उठा। उनके नेत्रोंमें नीर भर आया। उन्होंने व्याकुल होकर कहा,—"देवरजी ! शीघ्र जाओ, देखो—तुम्हारे पूज्य भैयापर कोई संकट आया जान पड़ता है; क्योंकि आजसे

सीता और माया-मृग।

मृग रामको देखतेही चौकन्ना भागा भागते भागते वह उन्हें बहुत दूर ले गया [पृष्ठ—९८]

यह सुन लक्ष्मणने कहा,—"माता! तुम व्यर्थ क्यों घबराती हो? भैयाके ऊपर कभी किसी तरहका सङ्कट आही नहीं सकता। उनके मुँहसे ऐसी दीनता-भरी बातें कदापि नहीं निकल सकतीं। हमें भ्रममें डालनेके लिये किसी राक्षसने यह चाल खेली है। ठहर जाओ, वे अभी मृगको मारकर आतेही होंगे। मैं तुम्हें अकेली छोड़कर कहीं नहीं जा सकता।"

परन्तु प्रेमी हृदय सदा अशुभकीही आशङ्का करता रहता है; वह सौ-सौ तरहसे अपने प्रीतिपात्रके काल्पनिक दुःखोंके चित्र अङ्कितकर दुःखित, व्यथित और चिन्तित होता रहता है! क्या स्वामी, क्या स्त्री, क्या पिता, क्या माता, क्या पुत्र—संसारमें जिस किसीपर हमारा अधिक स्नेह होता है, हम सदा उसकी बुराईकी आशङ्का करके घबराया करते हैं। कुछही देर आँखोंकी ओट होनेसे, हम सोचने लगते हैं, कि राम जानें, हमारा प्रिय इतने समयमें कैसे कष्टसे समय बिता रहा होगा! वह सुखी होगा, निश्चिन्त होगा—यह बात हमारे मनमें कदाचित्‌ही पैदा होती है, हमको केवल उसके कष्टहीकी सूझती है! एक तो प्रेमका यह साधारण नियम है; तिसपर मायावी राक्षसका कौशल हो गया! फिर भला सीताका मन कैसे धीरज धरता? वे लक्ष्मणपर बहुत बिगड़ उठीं और उन्हें लाखों बुरी-भली कह गयीं। उन्होंने उनकी ऐसी लाञ्छना की कि, लाचार होकर लक्ष्मण सीताकी आज्ञा सिरपर चढ़ा, रामके अनुसन्धानमें चल पड़े। जाते-जाते उनके मनमें भय, आशङ्का और ग्लानिकी आँधी सी बहने लगी। एक तो उन्हें रामका डर था, दूसरे सीताको अकेली छोड़ जानेका

सोच था, तीसरे उनके ताने-भरे वाक्योंकी मर्म्म-वेदना थी ! बार-बार पीछे फिर-फिरकर आश्रमकी ओर देखते जाते थे। उस समय लक्ष्मणके हृदयमें कुछ वैसेही भाव थे, जैसे भावोंसे भरकर गौका बछड़ा अपनी मातासे बिछुड़ते समय, उसे बार-बार पीछे फिरकर देखता जाता है।

इस तरह दोनों भाई जब कुटीके बाहर चले गये, तब रावण, जो कि वहीं छिपा हुआ अवसरकी प्रतीक्षाकर रहा था, संन्यासी-का वेश बनाये कुटीके द्वारपर आया और भीख माँगी। सीताने उस कपटी संन्यासीका कपट न पहचाना और बाहर निकलकर भिक्षा देने आयीं। उस बने हुए संन्यासीने भीखकी बात तो किनारे रख दी और लगा प्रेमका गीत गाने। उसने सीताके रूपकी बड़ाई करते हुए तरह-तरहकी प्रेम-कथाएँ सुनानी आरम्भ कीं। अन्तमें उसने कहा, "सुन्दरी ! जिसके नामसे समस्त देव, दानव, गन्धर्व्व, किन्नर, मनुष्य—सभी भयसे काँप उठते हैं, मैं वही लङ्का-पति रावण हूँ। मुझे कोरा भिखारीही न जानना। हाँ, तुम्हारे रूपका भिखारी अवश्य हूँ। सीधे मनसे मेरे साथ चली चलो और लङ्काका राज्य-सुख भोगो, इस झोपड़ेमें क्या रखा है ?"

उसके इन दुष्टताभरे वचनोंको सुनतेही सीताके भय और विस्मय तो हवा हो गये, उनके स्थानमें सतीत्वका तेज और अपमान-जनित क्रोध पैदा हो आये। तनिक भी डरे या सकु-चाये बिना, बड़ी धीरता और गम्भीरताके साथ सीताने कहा,—

"रे मूर्ख! तू ये कैसी बातें कर रहा है? क्या तेरे सिरपर काल सवार है, जो स्यार होकर सिंहकी स्त्रीकी ओर दृष्टिपात करता है? तू कितना भी है तो राक्षस है, और मैं मानवोंमें पुरुषोत्तमकी भार्य्या हूँ! तेरी क्या सामर्थ्य, जो मेरे ऊपर कुदृष्टि करे? अपना भला चाहे तो अभी अपना मुँह यहाँसे काला कर, नहीं तो देवर सहित मेरे स्वामी आतेही तेरी बोटी बोटी चील-कौओंकी भेंट कर देंगे। तू वामन होकर चाँद पकड़ने आया है? जा-जा, एक बार आइनेमें अपना मुँह तो देख आ, पापी!"

सीताकी यह फटकार सुन और उनके मुखमण्डलपर झलकते हुए सतीत्वके अपूर्व तेजको देख, पहले तो रावण बहुत सकपकाया, परन्तु जो आदमी भले-बुरेके विचारसे रहित हो, अपने परिणामकी बात भूल जाता है, वह लाख बाधा विघ्नोंकी उपेक्षा करते हुए भी पापके पथमें पैर रखे बिना नहीं मानता। रावण भी इस समय विचार-शून्य, अपरिणामदर्शी और धर्म्माधर्म्मके ज्ञानसे रहित हो रहा था। अतएव जब उसने देखा, कि यह सती झूठे प्रेमके प्रलोभनकारी वचनोंके फन्देमें न आयेगी, तब उसने बल-प्रयोग करनेकी ठानी और उन्हें झटपट पकड़कर अपने पासही खड़े हुए रथपर बैठा लिया। अब तो सीता बड़ी विवश हो गयीं और गिड़-गिड़ाकर उससे प्रार्थना करने लगीं, कि "मुझे छोड़ दे, अकेली अबलाको न सता।" पर वहाँ कौन धर्म्मकी कहानी सुनता था? रावणने रथको हाँकही तो दिया। अब सीता धीरज छोड़कर रोने लग गयीं, जिसे सुनकर वनके पशु पक्षियोंके प्राण भी व्याकुल हो गये। वे सिसक सिसककर कहने लगीं—

जटायु-वध ।

"रावणने मारे क्रोधके तलवार निकाल गृध्रराजके दोनों पंख काट डाले।"

विमान-बलसे वायुमण्डलमें विचरण करता हुआ पापी रावण जालबद्ध हिरनीकी नाईं तड़पती हुई सीताको लिये-दिये अल्पकालमें लङ्कामें आ पहुँचा। कई बातोंका विचार कर उसने सीताको अपने अन्तःपुरमें न रखकर "अशोकवाटिका" नामकी अपनी फुलवारीमें ला उतारा और उनपर विकट राक्षसों— भयावनी राक्षसियोंका पहरा बैठा दिया।

मृगरूपी राक्षसको मार, उसके मरते समयके 'हा लक्ष्मण! हा सीते!' कहकर चिल्ला उठनेकी बातपर तरह-तरहके तर्क-वितर्क करते हुए रामचन्द्र लौट चले। चलते-चलते वे भयाकुल चित्तसे सोचते जाते थे, कि कहीं इस झूठी पुकारको सुन लक्ष्मण घबराकर मेरी खोजमें सीताको अकेली छोड़कर चल न दें! यही सोचते हुए वे जल्दी जल्दी पैर बढ़ाते चले जारहे थे, कि आधेही रास्तेमें लक्ष्मण मिल गये। उनकी वह बावलीसी मर्त्ति

है। जल्दीसे चलो। तुमने मेरी आज्ञा उलङ्घन करके अच्छा म नहीं किया।"

तब लक्ष्मणने सीताके घबराने और उसी घबराहटमें आकर ङ्गा-भरे कटुवचन कहनेका सारा हाल रामसे कह सुनाया और खोंमें जल भर लाये। यह सुन रामने सोचा,—"अवश्यही ज हमपर कोई भारी विपद् आनेवाली है, नहीं तो जिन ताके मुखसे आजतक कभी किसीके प्रति कटुवचन नहीं कला, वे आज इस प्रकार लक्ष्मण जैसे आज्ञाकारी देवरपर क्य-बाणोंकी बौछार क्योंकर करतीं? अवश्यही राक्षसोंकी या काम कर गयी और उन्होंने हम दोनोंको भ्रममें डालकर श्रमसे अलग कर दिया। सीताको सूनी कुटीमें अकेली पा, जाने उन सबोंने कौनसा उपद्रव कर डाला होगा!" यही र सोचते-विचारते, मलिन मुख किये, दोनों भाई कुटीमें आये।

शङ्का व्यर्थ नहीं गयी। उन्होंने कुटीमें प्रवेश करतेही देखा, वह तो सूनी पड़ी है—सीता नहीं हैं। देखतेही दोनों इयोंकी सारी सुध-बुध जाती रही। रामचन्द्रने, अपनी ग-समान प्यारी भार्य्याको न देख, ऊँचे स्वरसे, "सीता! ता!! जानकी! जानकी!!" कहकर कितनी बार पुकारा, न्तु सिवाय प्रतिध्वनिके किसीने उनकी पुकारका उत्तर नहीं ा। अब तो शोकके प्रबल वेगके कारण रामचन्द्रका वीर-य अधीर हो गया और वे बालककी भाँति पुक्का फाड़कर े लगे। लक्ष्मण उनके दुःखसे सौगुने अधिक दुःखी हुए, न्तु उन्होंने देखा, कि दोनोंके अधीर होनेसे बड़ा भारी अनर्थ

हो जायगा, अतएव बड़े साहसके साथ अपनेको सम्हालक
तरह-तरहसे बड़े भाईको समझाने लगे, परन्तु रामचन्द्रक
किसी तरह धैर्य्य नहीं हुआ। वे रोते-रोते मूर्च्छित हो गये
किसी-किसी तरह उनको होशमें लाकर, लक्ष्मणने उनसे धैर
धारण करने और सीताकी खोज करनेके लिये कहा और यह भं
कहा, कि सम्भव है, कि वे कहीं पुष्प आदि लेने चली गयी हों

' इसी प्रकार बड़ी देरतक विलाप कर, भर-पेट आँसू बहा,
मचन्द्रने, लक्ष्मणको साथ ले, वनमें सर्वत्र सीताको ढूँढ़ना
ारम्भ किया। पर उनका रोना किसी तरह काम न हुआ। वे
व खोजते-खोजते हार गये और सीताको न पाया, तब उच्च
ारसे रो उठे। उन्होंने वनके पेड़ों, पत्तों, फूलों, फलों
ौर पशु-पक्षियोंसे भी रो-रोकर सीताका पता पूछा—पर हाय!
ोई उनके हृदयकी अग्निको बुझानेके लिये शान्ति-जलका एक
ँद डालनेमें भी समर्थ नहीं हुआ!

न

य

(५)

इसी तरह खोजते-खोजते वे बहुत दूर चले गये और वनके
ोने-कोनेमें घूम आये, पर सीताको पाना तो दूर—उन्होंने उनका
ता भी न पाया! वे निराश होकर लौटाही चाहते थे, कि
न्होंने देखा, कि थोड़ी दूरपर गीधोंका राजा, जटायु, रक्तसे
रावोर और पङ्खसे हीन होकर, पृथ्वीमें पड़ा हुआ, मारे पीड़ाके
ड़पटा रहा है। उसकी यह दशा देख, रामचन्द्र थोड़ी देरके
ये अपना भयानक दुःख भूल गये और उस गृध्रकी सेवाके
ये अग्रसर हुए। उस समय रामचन्द्रने जैसी उदारता, जैसी
ीति और जिस उत्साहभरे आग्रहके साथ उस दीन पक्षीकी
हायताके लिये हाथ बढ़ाया, उसकी कौन प्रशंसा न करेगा?
सरेका दुःख देखकर, जो अपना दुःख भूल जाते हैं, वास्तवमें
ही महान् पुरुष हैं, उन्हींका नाम युग-युगान्तरके लिये
मर हो जाता है! अस्तु, रामचन्द्र लपके हुए गृध्रराजके पास

ल्दी-जल्दी पैर बढ़ाये
आये और उसे गोदमें ले, जलके छींटे
चेष्टा करने लगे। गृध्र
उससे बोला
ये लोग पम्पा नामक एक प्रा
आ पहुंचे। उसके निकटही एक बड़ा सु
बड़े विस्त
भी हुआ था। न जाने क्यों, रामचन्द्रसे वहाँ ठ
बना न रहा गया। उस आश्रममें 'शबरी' नामकी
बुढ़िया भीलनी बहुत दिनोंसे रहती और रात दिन ईश्वरके भ
पूजनमें मन लगाये जीवनके दिन पूरे कर रही थी। नीच
और स्त्री-कुलमें जन्म पाकर भी वह साधु सन्तोंके सत्स
प्रभावसे भक्तिमार्गमें परम प्रवीण हो गयी थी। उसके
धर्म भावने रामचन्द्रको आकर्षित किया और प्रियतमाके विर
व्याकुल हृदयको क्षणभर शान्ति देनेके लिये वे वहाँ ठहर ग

शवरीके आश्रमसे विदा हो, वे और घने जङ्गलोंकी राह होकर जाने लगे। वनकी शोभा देख-देखकर रामचन्द्रका हृदय फटा जाता था; उनकी आँखोंमें रह-रहकर आँसू उमड़ आते थे। मृग-मृगियोंका वह मिलजुलकर चरना, वृक्षोंके साथ नन्हीं-नन्हीं लताओंका वह लिपटना, वृक्ष-वृक्षमें नयी-नयी पत्रावली, फूल-फूलमें नया विकास, भौंरे-भौंरियोंका वह मधुर गुञ्जार, मोर-चकोर-कीर आदि पक्षियोंका अमृत-समान कलरव देख-सुनकर उनकी वियोगाग्नि और भड़क उठती थी तथा वे अधीर होकर विलाप करने लग जाते थे।

धीरे-धीरे ऋष्यमूक-पर्व्वत निकट आ गया। उसकी ऊँची चोटियोंको देखतेही, वे समझ गये, कि यही वह पर्वत है, जिसका पता शवरीने दिया था। पासही सुन्दर सरोवर था। उसमें स्नानकर दोनों भाइयोंने अपना पथ-श्रम दूर किया। तदनन्तर वे पर्व्वतपर आरोहण करने लगे।

इसी पर्व्वतपर उन दिनों किष्किन्धाके कपिकुलके राजा वालीका छोटा भाई, सुग्रीव, अपने मंत्रियों और अनुचरोंके साथ रहता था। वाली बड़ा दुष्ट, पापी और अत्याचारी था। उसीके डरसे सुग्रीव यहाँ छिपा रहता था। इन दोनों भाइयोंका वह वीरवेश और तेजःपुञ्ज शरीर देख, उसने मनमें सोचा, कि अव-

श्यही ये भी वालीके भेजे हुए आ रहे हैं और कुछ-न-कुछ उत्प
अवश्य करेंगे; परन्तु अपने जीसे किसी सिद्धान्तपर विना निश्च
किये पहुँच जाना नीतिके विरुद्ध समझकर उसने अपने मन्त
हनुमान्‌को बुलाकर कहा,—"हनुमान्! ये जो दो वटुरूप कुम
पर्व्वतपर चढ़े आ रहे हैं, जाकर उनका परिचय प्राप्त करो। य
वे उदासीन हों, तो इन्हें मित्र बना लेना अथवा शत्रु हों,
वहीं ठिकाने लगा देना।"

आज्ञानुसार हनुमान् उनके पास आये और पूछने लगे, f
"आपलोग कौन हैं? किस कामसे और कहाँ जा रहे हैं!
उत्तरमें रामचन्द्रने उन्हें अपना पूर्ण परिचय देते हुए अपन
विपत्तिकी बात कह सुनायी। सुनकर हनुमान्‌का हृदय दया
भर गया और वे बोले, कि "आप लोग हमारे राजा सुग्रीवके पास
चलिये, उनसे मिलकर मित्रताका नाता जोड़िये, वे अवश्य
सीता-माताका उद्धार करनेके लिये इधर-उधर दूत भेजेंगे औ

ं। ऐसी अवस्थामें आपका आना मैं अहोभाग्य समझता हूँ। आप भी दुःखी हैं, मैं भी दुःखी हूँ—दोनोंकी अवस्था मिलती-जुलती है—आइये, हमलोग मित्रता कर लें। आप यदि मेरी सहायता करें, तो मैं भी प्राण देकर आपकी पत्नीको खोज निकालूँ और आपसे मिला दूँगा।" यह कह सुग्रीवने दोनों भाइयोंके आगे अपना सिर झुका दिया।

उसी क्षण अग्निको साक्षी देकर राम और सुग्रीव दोनों जने मित्रताके बन्धनमें बँध गये। तब सुग्रीवने रामचन्द्रसे सीता-हरणका सविस्तर वृत्तान्त पूछा। उनके बतलानेपर उसे एक भूली-भुलायी बात याद हो आयी। उसने कहा,—"महाराज! कुछ दिन हुए, मैं अपने मन्त्रियों सहित एक दिन यहीं बैठा हुआ परामर्श कर रहा था, कि ऊपर आकाश-मण्डलमें बड़ा भयानक

ा-सेवाके अतिरिक्त उसके अङ्गोंकी ओर देखना भी पाप समझा
ता था, उसी भारतमें राम और लक्ष्मणको आदर्श माननेवाले
द्-बालक होलीके दिनोंमें भाभीके साथ होली खेलते, पिचकारी
र अङ्ग-अङ्गमें रङ्ग डालते और भलेमानसोंके न सुनने
ग्य परिहास करते हैं! कितनी लज्जाका विषय है!. इस
के पढ़नेवालोंमेंसे यदि एक भी देवर अबसे अपनी भाभियों-
देल्लगी करना और होली खेलना बन्द कर दें, तो हम समझेंगे,
उन्होंने लक्ष्मणके आदर्शसे शिक्षा ग्रहण की और हमारा यह
वनी-घर्पण सफल हो गया। बड़ा भाई पिता-तुल्य है, उसकी
ी माताकी बराबर हुई, फिर उससे परिहास! कितनी बड़ी
चता, कैसी घृणित बात है! अस्तु।

लक्ष्मणकी बातोंसे रामचन्द्रको निश्चय हो गया, कि सचमुच
आभूषण सीताकेही हैं और वे इन्हें इसीलिये डाल गयीं
जिसमें हमें उन्हें खोज निकालनेमें सुविधा हो। ऐसा निश्चय
तेही रामचन्द्र प्रियतमाकी याद कर बड़े विकल हो गये और
धीर होकर विलाप करने लगे। यह देख सुग्रीवने उन्हें समझाना
ारम्भ किया और सीताका पता लगाकर उन्हें फिर रामचन्द्रसे
ला देनेकी प्रतिज्ञा की। इससे उन्हें धीरज हुआ और दोनों
त्र एक दूसरेकी सहायता करनेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध हुए।

और क्रोधके भाव पैदा हो गये। उन्होंने घन्नकी भाँति र
करते हुए कहा,—"रे दुष्ट! तू फिर यहाँ आया? आया
जी जलाने, हृदय दुखाने? नीच! कमल सूर्य्यकोही देख
खिलते हैं, लाख जुगनुओंके प्रकाशसे भी उनका विकाश
होता। सती स्वामीसेहो प्रेमकी बातें करती है, प
पुरुषसे बातें करनेमें वह अपना अपमान समझती है। तु
तू चोरीसे, मेरे स्वामीके अनजानतेमें, बलपूर्वक मुझे हर ल

रावण, मन्दोदरी और सीता।

मन्दोदरीने रावणका हाथ थाम लिया और कहा कि स्त्रीको न मारो

Burman Press, Calcutta

(पृष्ठ—१२१)

रावण, मन्दोदरी और सीता।

मन्दोदरीने रावणका हाथ थाम लिया और कहा कि सीता न मारो

Burman Press Calcutta

अवस्था रही होगी, उनपर कैसी बीतती होगी—यह अनु
आना असम्भव है। परन्तु इन सारे शरीर और मनके क
वे पतिके स्मरण चिन्तन और धर्मकी दृढताके बलपर सह
थीं और पतिदेवके दर्शनोंकी आशासे प्राणधारण किये हुए
पर दिन बिताये चली जाती थीं। धन्य सीते! धन्य तु
पातिव्रत!! धन्य तुम्हारी धर्म निष्ठा!!!

इस स्थानपर पाठक पाठिकाओंको सीताके दिव्य चरि
कैसी उज्ज्वल छटा दिखाई देती है! राजाकी लडकी, रा
पुत्रवधू और राजाकी रानी होकर भी उनकी अवस्था आज
हीन है। उन्होंने अयोध्याकी राजलक्ष्मीको स्वामीके साथ
के लिये पैरोंसे ठुकरा दिया और स्वामीके साथ रह उनके
और सेवनसे अपनी आत्माको सुखी बनाये हुई थीं, परन्तु
विधातासे उनका यह सुख भी नहीं देखा गया। जिन प्रा
के वियोगके भयसे उनको सब-कुछ छोडना पडा—व
जिनसे अलग होकर वे स्वर्गके राज्यको भी अपमानके
पैरोंके नीच कुचल देतीं और उसकी उपेक्षा करतीं, उन्हीं
पतिसे भाग्यने, एक क्षणकी कौन कहे महीनों विछुडाये रख
भी वे जीती रहीं। कौनसी आशा, किस आकाक्षाने उन्हें
से रोका? किस सौभाग्यको देखनेके लिये उनका जीवन
रहा? दिन रात पाप, सन्ताप और त्रासके वे भीषण शब्
सुनने पडते थे, जिनका एक एक अक्षर तीरकी तरह उनके
में चुभ-चुभ जाता था, परन्तु उनका हृदय नारी-सुलभ को
से भरा हुआ होनेपर भी किसी तरहके कुविचार, कुसंस्का

लनाके लिये वज्रसे भी कठिन था और इनका उसमें प्रवेश
अतीव कठिन, अत्यन्त असम्भव था। जिस सतीने पति-
छोड़ और किसीको न पहचाना, जिसने हँसते हँसते पतिके
चक्रवर्ती-राज्यको लात मार दी, जिसके नयनोंमें एकमात्र
का अभिराम रूप रम रहा था, जिसके रोमरोममें राम रमे
थे, वह महाप्राणा देवी भला रावणके ऐश्वर्य्यको देखकर
भूल सकती थी? उसके प्रलोभनों और धमकियोंमें क्यों-
आ सकती थीं? कदापि नहीं। सीता उत्तम सती थीं, वे इस
नके महत्व को भली भाँति समझती थीं, कि—

उत्तमके अस बस मनमाहीं।
सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥

धर्मके इन्हीं गुरुतर विचारोंने सीताको बलवान् बना रखा
। इसीसे वे उस त्रिलोक-विजयी वीरको सहस्रों बार अपमा-
करते हुए भी न डरीं। वह भी सिंहिनीके गर्जनसे दुम दबाकर
जानेवाले स्यारकी तरह चुपचाप उनके आगेसे चला जाता
, परन्तु आशा नहीं छोड़ता था। वह सोचता—नित्यके
भरने और अनेक दिनोंतक पतिसे न मिलनेसे काल पाकर
कुछ-न-कुछ नरम होही जायगी; अतएव बारह महीनोंकी
धितक आशा न छोड़नेका उसने सङ्कल्प कर लिया
। परन्तु उसे नहीं मालूम था, कि सीताका शरीरमात्र

को उसके जैसे करोड़ों रावण भी कभी दूर नहीं कर सकते।

शारीरिक बलमें स्त्रियाँ स्वाभाविक कोमल होती हैं, परन्तु जिस समय उनके सतीत्वका तेज प्रकाशित होता है, उस समय बड़े-बड़े बलवानोंको भी उनके सामने पराजित होना पड़ता है। कौन ऐसा माईका लाल है, जो सतीके सामने आँखें मिलाता हुआ खड़ा रह सकता है? जो उस जलती हुई अग्निशिखाका स्पर्श करने जायगा, उसे निश्चयही प्राणोंसे हाथ धो बैठना होगा।

रावणका भी यही हाल हुआ, सीताके सतीत्वके आगे उसे बुरी तरह हार माननी पड़ी और उसका कोई छल, बल और कौशल काम न आया।

सुग्रीवके साथ मित्रता कर रामचन्द्र और लक्ष्मण... शान्ति मिली। उन्हें आशा हुई, कि सुग्रीवकी सहा... हम, सीताका पता लगाकर, उनका उद्धार कर सकेंगे।

एक दिन सुग्रीवने रामसे अपने भाईके अत्याचारोंका ... करते हुए कहा,—"मित्र! बालीके हाथसे राज्यका अ... छीन लिया जाय, तो अपने सङ्गी-सहायकोंकी संख्या बढ़... जायगी और तब हमलोग अपना काम बड़ी शीघ्रतासे ... सकेंगे।"

यह सुन रामचन्द्रने कहा,—"मित्र! तुम्हारा कहना ... राज्यका सारा धन, सारी सेना, बालीके हाथमें है, ... कठ भी नहीं है। ...

भरपेट निन्दा करनेके बाद वालीने अपनी जीवन-लील
समाप्त की।

वालीका विधिवत् दाह-कर्म्म और श्राद्धादि क्रिया कर चुक
पर सुग्रीवने राजसिंहासनपर आरोहण किया। लक्ष्मणने अ
हाथों सुग्रीवको राजतिलक दिया। वालीका पुत्र, अङ्गद, यु
राज बनाया गया। राज्यमें बड़ा भारी आनन्द-समारोह मना
गया। सब लोग सुग्रीवका जय-गान करने लगे। सुग्रीव
उन दोनों भाइयोंसे अपने राज्यमें चलनेका बहुत अनुरोध किय
परन्तु वे यह कहकर न गये, कि चौदह वर्षतक हम किस
नगरमें वास नहीं कर सकते।

सुग्रीवके राज्य पाकर राजधानीमें चले जानेपर, राम-लक्ष्म
भी वहाँसे डेरा-डण्डा उठा प्रवर्षण-गिरिपर चले आये। उ
दिनों वर्षा-ऋतु थी। वनमें चारों ओर हरियाली छायी हुई थ
विरहियोंके लिये वर्षा-काल बड़ा बुरा होता है। कहते हैं, कि इ
ऋतुमें प्रेमियोंका बिछुड़ना एकबारगी असहनीय हो जाता है
रामचन्द्रका भी वही हाल हुआ। पावसने उनपर भी अप
प्रभाव दिखलाया। उनकी विकलता दिन-पर-दिन बढ़ने लगी

एक दिन दोनों भाई पर्वतकी एक शिलापर बैठे, ना
प्रकारकी चर्चाएँ करते हुए दुःखी मनको बहला रहे थे,
इसी समय एकाएक आकाशमें बादल छा गये और वर्षा ह

हीके मुँहसे कदापि नहीं निकल सकतीं—पर उस विरह-
ल अवस्थामें भी रामने जैसे पाण्डित्यसे वर्षाका वर्णन
मणसे किया, उसे देख, रामके हृदयकी उदाशयताकी
-पार प्रशंसा किये बिना रहा नहीं जाता। उन्होंने कहा,—
"लक्ष्मण! देखो, आकाशमें कैसा घोर मेघ-गर्जन हो रहा
इसे सुन सीताके विरहका स्मरण कर मेरा हृदय काँप रहा
देखो, मेघकी गोदमें बिजली कैसी चंचलतासे चमक रही
ठीक इसी तरह खल मनुष्योंकी प्रीति भी स्थिर नहीं रहती।
सनेवाले बादल ऐसे झुके पड़ते हैं, जैसे विद्या पाकर पण्डित-

अन्तमें निराश हो, वे गलेमें फाँसी लगा आत्महत्या करनेको तैयार हो गयीं। फाँसी लगानेका और कुछ साधन पास न था, तो सिरपर बालोंकी वेणी तो थी! उन्होंने सोचा, इसीसे गला दबाकर प्राण दे दूँगी। मन-ही-मन यह स्थिर कर वे एक वृक्षकी शाखा पकड़कर खड़ी हो गयीं और बालोंसे गलेमें फाँसी लगानेका सुयोग ढूँढ़ने लगीं।

इसी समय रावण वहाँ आया और भाँति-भाँतिके प्रलोभन देता हुआ, उनसे रामको भूलकर लंकेश्वरी बननेके लिये अनुरोध करने लगा। उसके इन दुर्वाक्योंको सुन मृत-तुल्य सीताके शरीरमें सिंहिनीकासा बल आ गया। वे गरजकर बोलीं,—"रे पापी! तू इतनी बार मेरी फटकार सुनकर भी फिर मेरे सामने अपनी पाप-पूर्ण बातें सुनाने आया? तू मुझे भी क्या उन्हींकीसी स्त्री समझता है, जो पर-पुरुषका अङ्गीकार कर अपने दोनों लोक बिगाड़ डालती हैं? यदि हाँ, तो अपनी इस धारणाको दूर कर दे। मैं राजा जनककी बेटी, राजा दशरथकी पुत्रवधू तथा उनके ज्येष्ठ पुत्रकी सहधर्म्मिणी हूँ—मुझसे तू किसी तरहके पापकी आशा न कर। तू मुझे राज्यका क्या लोभ दिखाता है? जो आपही अपने राज्यको लात मार आयी है, वह तेरे राज्य और वैभवको लाख-लाख बार लानत भेजती है। मैं तेरे चेहरेपर थूकूँगी भी नहीं। तू ये बढ़-बढ़कर बातें क्यों कर रहा है? यदि अपना भला चाहता है, तो मुझे मेरे स्वामीके पास पहुँचा दे। वे क्षमाके सागर हैं, तू दीन बनकर उनके चरणोंमें गिरेगा, तो वे तेरे सारे अपराध क्षमा कर देंगे। अब भी चेत जा, नहीं तो मेरे

सीताकी आत्महत्याकी चेष्टा।

'एक वृक्षकी शाखा पर खड़ी हो गयी और बालोंसे गलेमें फांसी लगानेवाली थी।'

(पृष्ठ—१३४)

शरीरके ये रोएँ जितनेही दुःखी हो रहे हैं, उतनाही तेरा सर्व-नाश समीप हुआ जाता है। अत्याचारी! मैं तुझे शाप देती हूँ, मेरे शापसे तेरा कुलका कुल नाश हो जायगा—देख लेना, यह सोनेकी लङ्का राखका ढेर हो जायेगी।"

इन तिरस्कार-भरे वचनोंको सुन रावणने सीताको मारनेके लिये तलवार उठायी, परन्तु स्त्रियोंने इस बार भी स्त्री-हत्याके पापसे उसे बचा दिया। "अच्छा, दो महीने और देख लूँ, फिर तो तेरी बोटी-बोटी नोचकर खा जाऊँगा। प्रेमको हिंसामें बदलते क्या देर लगती है?" यह कहता हुआ रावण वहाँसे चला गया और पहरेवालोंको अच्छी तरहसे पहरा देने तथा सीताका मन फेरनेके लिये चेतावनी देता गया।

सीताकी खोजमें हनुमान् दो दिनोंसे लङ्काके घर-घर घूम रहे थे; परन्तु जो वर्णन सीताके रूपका उन्हें दिया गया था, उस रूप-रङ्गवाली एक भी स्त्री उन्हें कहीं न दिखाई दी। उन्हें सन्देह होने लगा, कि कहीं रावणने उन्हें मार तो नहीं डाला? अथवा स्वामीका वियोग न सह सकनेके कारण उन्होंने अपने प्राण तो त्याग दिये? यह सोच, वे बड़े दुःखी हो रहे थे। आज पास इस वाटिकामें पहुँचनेपर उन्होंने जो कुछ देखा-सुना, उन्हें एकही साथ हर्ष, शोक और विस्मय तीनोंही हुए। हर्ष सफलतापर, शोक सीताके दुःखोंपर और विस्मय इस, कि लोगोंने सीताका अनुपम रूप-लावण्यही उनसे वर्णन

किया था ; परन्तु यहाँ आकर उन्होंने देखा, कि सीताका हृद
उनके शरीरकी अपेक्षा सहस्रगुण सुन्दर है। उनके हृदयक
पवित्रता, वचनोंकी दृढ़ता, पति-प्रेमकी प्रगाढ़ता देख, हनुमान्‌
मनमें बड़ी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हुई और उन्होंने मन-ही-मन उन
चरणोंमें प्रणाम किया।

रावणके चले जानेपर उदासमनसे नाना प्रकारकी चिन्त
करती हुई सीता टहलने लगीं। टहलते-टहलते वे उसी वृक्ष
नीचे आ पहुँचीं, जिसपर बैठे हुए हनुमान् यह सारी लीला दे
रहे थे! उस वृक्षके पास पहुँचतेही उनका बायाँ नेत्र न जाने क
एकाएक फड़कने लगा। उन्होंने सोचा, "बस, अबके मैं अवश्य फाँ
लगाकर मर सकूँगी और मेरे सारे दुःख-कष्ट दूर हो जायँ।
इसीसे यह शुभ शकुन हो रहा है। मेरी पहरेदारिनें भी इ
समय दूर हैं। कोई मेरा यह काम देख भी न सकेगा।" वे

सीता-उद्धार

(१)

एक-एक करके सुग्रीवके भेजे हुए सभी दूत लौट आ
पर कोई अपने कार्यमें सफल न हुआ। एकमात्र ह
मानही नहीं लौटे। उनके आनेमें जितनीही देरी होने लगी, उतना
सबके मनमें भय, चिन्ता और आशङ्का पैदा होने लगी। रामचन्द्र
मनमें बड़ी भारी उत्कण्ठा होने लगी। लक्ष्मण, अपने बड़े भा
की विकलता बढ़ती देख, दिन-दिन दुबले होने लगे।

इन्हीं चिन्ता-पूर्ण दिनोंमें एक दिन हनुमान् अकस्मात्
पहुँचे। रास्तेमेंही और-और कपियोंने उनसे सारा हाल पू
लिया था। अतएव सब लोग बड़ा आनन्द कोलाहल कर
हुए रामचन्द्रके पास पहुँचे। यह देखतेही दोनों भाइयोंके मन
कली खिल गयी, आँखोंमें आनन्दके आँसू उमड़ आये। वे सम
गये, कि हनुमान् अपने काममें पूरी सफलता प्राप्त कर आये।

हनुमान्ने पास आते ही रामचन्द्रके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणा
कर कहा,—"भगवन्! आपके पद-पद्मके प्रसादसे मैं भगवत
सीताका पता लगा लाया। हमलोगोंका सन्देह पक्का था—
लङ्कापति रावणही उनको बलपूर्वक पकड़ ले गया है। आ
दस महीनोंसे वे जो कष्ट पा रही हैं, वह देखतेही छाती फ

जाती है। उन्होंने मेरे मुँहसे आपका नाम निकलतेही जो विलाप आरम्भ किया, जैसी दुःखभरी कहानी सुनायी, वह सुनते-सुनते मैं पागलसा हो गया। नाथ! अब शीघ्र दल-बल सहित लङ्का चलिये और दुष्टको दण्ड दे, माता सीताका दुःख मेटिये। उन्होंने चलते समय यह चूड़ामणि आपको देनेके लिये दी है और रो-रोकर कहा है, कि मैं अबतक अवश्य प्राण दे देती, परन्तु प्राणेश्वरके एक बार दर्शन किये बिना प्राण शरीरको छोड़ना नहीं चाहते। रावण जैसे दुष्टात्मा और पराक्रमीके पञ्जे में पड़कर भी उन्होंने जिस प्रकार अपने धर्म्मकी रक्षा की है, सतीत्वकी जो पराकाष्ठा दिखायी है, मानवी-रूपमें भी देवीत्वका जो स्पष्ट उदाहरण दिया है, वह उनकाही काम है। नाथ! ऐसी नारी पृथ्वीमें और नहीं। उनके एक-एक क्षण कल्पके समान बीत रहे हैं, पर आपके चरणोंकी दर्शन-लालसासेही वे अबतक जीवित हैं। अधिक क्या कहूँ? उनकी विकलता देख, क्षणभर-का विलम्ब भी मुझे बहुत अखर रहा है।"

परन्तु हनुमान्ने यह भाईचारा पसन्द नहीं किया। उन्होंने कहा,—"नाथ! मैं आपकी सेवा करनेवाला, आज्ञाकारी दास हूँ। आपका छोटा भाई बनूँ, मुझमें ऐसी न तो योग्यता है, न गुण हैं, न महत्त्व है। आप केवल इतनीही दया रखें, कि इन चरणोंके प्रेम और सेवासे मुझे वञ्चित न करें।" यह कह उन्होंने लङ्का-दहनका वृत्तान्त सुनाते हुए कहा, "नाथ! जिस समय आप लङ्कापर चढ़ाई करेंगे, उस समय मैं भी प्राण-पणसे आपकी सहायता करूँगा—केवल प्रार्थना यही है, कि अब इस जन्ममें मुझे इन चरणोंसे न्यारा न कीजिये। देव! हमने इसी बहाने आपके चरण-रजके दर्शन पाये, यह भी हम-लोगोंके सौभाग्य हैं, नहीं तो कहाँ आप पुरुषोत्तम और कहाँ हम बन्दरोंकी अधम जाति!"

उनके इन प्रेम-रस-सने अमृतमय वचनोंने रामचन्द्रको इतना मुग्ध कर दिया, कि वे बारम्बार 'सखा! मित्र! भाई!' आदि नाना प्रिय सम्बोधनोंसे उन्हें पुकारते हुए अपनी हार्दिक

ट-भरे, पाप-वासना-पूर्ण, क्रोधी, दुष्ट और संसारकी भलाईके
ये अग्रसर न होनेवाले निकम्मे मनुष्योंको तुमसे वन्दरोंके
नपर ईर्ष्या होनीही उचित है।

बात-की-बातमें सुग्रीवने वानर-भालुओंकी बडी भारी सेना
ार कर ली और लङ्कापर चढाई करनेके लिये यह सारा दल
 पडा। जब वे लोग समुद्रके किनारे पहुँचे, तब यह अथाह
 राशि देख, सबके हृदय काँप गये, कि कैसे इतनी बडी
ा उस पार पहुँचेगी। लेकिन चेष्टा, उद्योग और अध्य-
ायके आगे कोई भी काम असाध्य नहीं होता। दिन-
के निरन्तर परिश्रमके पश्चात् समुद्रपर पुल बँध गया और
री सेना लङ्काकी छातीपर उतर पडी।

जिस समय पुल बँध रहा था, उसी समय रावणके छोटे
ई विभीषणने उससे कहा, कि "भाई! वैर-विरोध बढानेसे
ा लाभ? देखो, एकही वन्दर आकर सारी लङ्काकी शोभा
गाड गया, अब यह पलटनकी पलटन आ रही है। ये लक्षण
छे नहीं। अब भी मेल-मिलापका समय है—सन्धि कर लो।
ी राय तो यही है, कि तुम व्यर्थका युद्ध न ठानो।" परन्तु
वण इस अच्छे परामर्शको मान लेनेके स्थानमें विभीषणपर
द्ध हो गया और उसने उसे लात मारकर घरसे बाहर निकाल
या।

विभीषण बेचारा सीधा, सादा और धर्म्मात्मा व्यक्ति था,

है। तुम सालभरके लगभग राक्षसोंके घरमें रहीं। वहाँ कोई तुम्हारा अपना-सगा नहीं था; वहाँ तुम रात-दिन केवल शत्रुओं-से घिरी रहती थीं। पराये घरमें तीन रातोंतक जो स्त्री रह जाय, उसे पुनः ग्रहण करनेमें साधारण आदमी भी आपत्ति करते हैं, फिर इतने दिन शत्रुपुरीमें रही हुई तुमको मैं किस प्रकार सङ्ग ले चलूँ? तुम्हारा जहाँ जी चाहे, चली जाओ। तुम्हारा उद्धार करना, वैरियोंसे बदला लेना, अधर्म्मका राज्य पृथ्वीसे उठा देना मेरा धर्म्म था, मैंने उसका पालन किया; परन्तु तुम्हें ग्रहण करनेमें मुझे आपत्ति है, ऐसा लोक-विरुद्ध कार्य मैं नहीं कर सकता।"

वज्रकी मारी हुईसी सीता ये कुलिशके समान कठोर बातें सुनती रहीं। बारह वर्षके वनवास, वर्ष-भरके विरह तथा रावणके दारुण उत्पीड़नसे उन्हें जो कष्ट हुआ था, उससे सहस्र-गुण अधिक दुःख उन्हें अपने सदा स्नेहमय स्वामीके मुखसे ये कठोर बातें सुनकर हुआ। वे मारे मनोवेदनाके अधीर हो गयीं। उनकी आँखोंमें आँसू भर आये।

स्त्री, सबकी बातें, सबकी लाञ्छनाएँ, सह सकती है; परन्तु प्रेममय पतिके किये हुए अपमानसे उसके प्राणोंको जो व्यथा पहुँचती है, वह असह्य हो उठती है। और जब वह अपमान बेजड़ बातोंके लिये होता है, तब तो उसकी ज्वाला एकही साथ सहस्र बिच्छुओंके डङ्क मारनेसे भी बढ़ जाती है। अन्यान्य अलौकिक गुण होते हुए भी स्त्री-हृदयके इस स्वाभा-विक गुणसे सीता भी शून्य न थीं। उन्होंने अपने मनके उद्-

लते हुए वेग और शोकके लहरें मारते हुए उच्छ्वासको रोककर कहा,—"राजन्!—क्षमा करेंगे, मैं इस समय आपको 'स्वामी' कहकर न पुकार सकी; क्योंकि इस समय आपने भी मुझसे स्वामीके समान बातें नहीं की हैं, राजाके समान न्यायका दण्ड हाथमें लेकर मुझे अपराधिनी प्रमाणित किया है। इसीसे कहती हूँ, कि राजन्! आपने छोटे लोगोंकी तरह मुझे ओछी बातें कहीं, यह आपको उचित नहीं था। जिस समय आपने ये बातें अपने मुँहसे निकालीं, उस समय क्या आपको यह नहीं स्मरण रहा, कि मैं कोई सामान्य स्त्री नहीं, बल्कि राजा जनककी पुत्री, रघु-कुलकी वधू और रामचन्द्रकी सहधर्म्मिणी हूँ? मेरे आचरणपर सन्देह करनेकी आपकी क्योंकर प्रवृत्ति हुई? इसमें कोई सन्देह नहीं, कि रावण मुझे बल-पूर्वक पकड़ लाया और उस समय उसने मेरा अङ्ग-स्पर्श भी किया था; परन्तु उस समय मैं असहाय थी। बली भुजाओंके साथ एक अबलाके निर्बल हाथ जहाँतक बल-प्रयोग कर सकते थे, वहाँतक मैंने अपनेको छुड़ानेकी भरपूर चेष्टा की; परन्तु किसी प्रकार सफल न हुई। आपत्ति-कालमें धर्म्मका इतना सूक्ष्म विचार नहीं किया जाता। रही उसके घरमें रहनेकी बात—सो मैंने उस पाजीकी ड्योढ़ीका चौकठ तक नहीं नाँघा। मेरे ये सारे दिन अशोक-वनमें शोक करते हुए बीते हैं। उसने मुझे प्रलोभन दिखानेमें कोई कसर नहीं की, परन्तु स्वामीके चरणोंके ध्यान, तथा धर्म्मके अटल अनुरागसे मैं उन सारे विपद्-जालोंसे अपनेको बचाती रही। मुझे नहीं मालूम था, कि आपके मनमें ऐसा विषधर सर्प बैठा हुआ है, नहीं तो

प्राण देकर सारे झञ्झट कर्मोके मेट देती। आप भी अपने प्राणोंको सङ्कटमें डाल, इस तरह अपने मित्रोंको भी विपत्तिमें क्यों फँसाते? हनुमानके द्वारा आपने जो कुछ प्रेम-सन्देश मेरे पास भेजा था, वह न भेजकर यदि आजहीकीसी बातें कहला भेजते, तो आज मैं आपको अपना यह कलङ्कित मुख दिखलाने क्यों आती? परन्तु राजन्! राजाको अपराधीके सम्बन्धमें पूरी खोज-पड़ताल करनेके बाद उसे दण्ड देना चाहिये। मैंने किस प्रकार यह सालभरका समय बिताया है, यह जाने बिना आपने जो मुझे त्याग देनेकी बात कह डाली है, उससे आपके न्यायमें बट्टा लगता है। क्यों नहीं यह कठोर वचन कहनेके पहलेही आपने मेरे धड़से सिरको अलग कर दिया? मर जाती, तो यह वेदना काहेको सहनी पड़ती? हाय! आपने एक क्षणके लिये भी मेरे उस प्रबल अनुराग और सच्चे स्नेहका स्मरण नहीं किया, जो वर्षाकालकी प्रबल वेगवती नदीकी भाँति मेरे हृदयसे निकलकर आपके चरणोंके प्रति निरन्तर प्रवाहित हो रहे हैं। राजन्! यही दण्ड मेरे लिये मृत्युसे बढ़कर है। किन्तु इतनेपर भी मैं मरती नहीं हूँ, इसका कारण यह नहीं है, कि मैं आपसे क्षमा पानेकी आशा करती हूँ। क्षमा माँगना क्षत्राणीका धर्म्म नहीं; इसमें रामचन्द्रकी पत्नीका कोई गौरव नहीं। मैं आपको इस बातका प्रमाण देना चाहती हूँ, कि मैं वैसीही निश्छल, निष्पाप और सती हूँ, जैसी नारायणकी लक्ष्मी और शिवकी पार्वती हैं।"

यह कह सीता क्षणरके लिये चुप हो रहीं। उनका मिलन-आनन्द तो कभीका नष्ट हो चुका था, अबके उनके चेहरेसे

इस दारुण अपमानकी कृष्ण छाया भी लुप्त हो गयी। रह गयी, केवल देवीकी मूर्त्तिपर विराजनेवाली स्वर्गीय ज्योति—सतीत्वका सूर्यप्रभासे भी अधिक चमकीला तेज! रामचन्द्र चुपचाप उनकी बातें सुनते रहे ; उनके मुँहसे कोई बात नहीं निकली। सीताने उन्हें चुप देख, फिर कहना आरम्भ किया :—

"राजन्! आपने इतने लोगोंके सम्मुख मेरे सतीत्वपर सन्देह और मेरे चरित्रपर आशङ्का की है। यह कलङ्क लिये हुए मैं मरनेको तैयार नहीं। मैं आपको इस बातका प्रमाण देना चाहती हूँ, कि मैं असती नहीं, सती—कलङ्किनी नहीं, निष्कलङ्क हूँ। कुँअर लखनलाल! आओ, भैया! मैंने तुम्हें एक दिन बहुत कड़ी-कड़ी बातें कही थीं—उसका फल मैंने इन बारह महीनोंमें भली भाँति भोग लिया है ; परन्तु देखती हूँ, कि उस पापका मुझे और भी प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। अतएव तुम अभी मेरे लिये चिता बनाओ। मैं उसमें प्रवेश करूँगी। यदि मैं सती न होकर असती हूँगी, तो उसी चितामें जल मरूँगी; पितृकुल और श्वशुर-कुलके कलङ्कका जीता-जागता उदाहरण जलकर भस्म हो जायगा और यदि सदा, सब समय, पति-परमेश्वरके चरणोंमेंही मेरा मन रहता होगा, तो अग्नि मेरा कुछ भी बिगाड़ न सकेगी, मैं उस अग्निमें न जलूँगी, वरन् स्वामीके आगे और भी दण्ड पानेके लिये जीती हुई खड़ी रहूँगी।"

यह सुनतेही लक्ष्मणकी आँखें डबडबा आयीं; वे कभी सीता और कभी रामकी ओर क्षोभ और दुःखके साथ देखने लगे। रामचन्द्रने उन्हें चिता बनानेके लिये आज्ञा दे दी और

चुपचाप गम्भीर मूर्त्ति बनाये बैठे रहे। उनकी वह गम्भीरता देख, जितने लोग वहाँ उपस्थित थे, सबके सब चकित और विस्मित हो रहे थे; पर किसीका इतना साहस न हुआ, कि उनसे एक बात भी कहे।

चिता प्रस्तुत हुई—अग्नि-संयोग कर दिया गया। गलेमें आँचल लपेट, स्वामीके चरणोंमें भक्ति-पूर्वक प्रणाम कर, सीताने चिताकी प्रदक्षिणा की। दर्शकोंके नेत्र करुणासे सजल हो आये। वे विस्मयसे आँखें फाड़े हुए कलङ्क-भञ्जनकी वह कठिन अग्नि-परीक्षा देखने लगे।

तदनन्तर सतीत्वके प्रचण्ड तेजसे तपते हुए मुखमण्डलवाली सीताने उच्चस्वरसे कहाः—

"मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नसंगे,
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह ममांगं पावनं पावकेदं,
सुकृतदुरितभाजां त्वं हि कर्म्मैकसाक्षी॥"

अर्थात्—"यदि तनसे, मनसे, वचनसे, सोतेमें, जागतेमें, स्वप्न देखतेमें, कभी भी मेरा पति-भाव रघुकुल-मुकुट-मणि रामचन्द्रके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषके प्रति हुआ हो, तो हे पाप-पुण्यके साक्षी अग्निदेव! तुम मेरे इस शरीरको जलाकर अभी भस्म कर दो।"

* "जौं मन, बच, क्रम मम उर माहीं * तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु! सबकी गति जाना * मोकहँ होउ श्रीखण्ड समाना॥"
(तुलसीदास

सीताकी अग्नि-परीक्षा।

'सीता निर्भय, निःशंक चित्तसे चलती हुई चितामें कूद पड़ीं।'

Burman Press Calcutta

[पृष्ठ—१६६]

यह कहती हुई वे निर्भय, निःशङ्क-चित्तसे जलती चितामें कूद पड़ीं। आगकी यह प्रचण्ड लपटें देख, एक हलकीसी चीत्कार-ध्वनि दर्शक-मात्रके मुँहसे निकल पड़ी। रामचन्द्रका अचल हृदय भी चंचल हो उठा। इसी समय लोगोंने देखा, कि अग्नि सहसा बुझ गयी, एक वृद्ध ब्राह्मण सीताको लिये हुए चितासे बाहर आये और बोले,—"राम! सीता सतीकुल-शिरोमणि हैं! इनपर सन्देह करना तुम्हारे लिये अनुचित है। मैं अग्निदेव हूँ,—मैं संसार-भरको पलमात्रमें जलाकर राख कर दे सकता हूँ; परन्तु इस परम तेजस्विनी सतीका केश-स्पर्श करनेकी भी शक्ति मुझमें नहीं है। सीताको तुम सादर ग्रहण करो। देखो, इस धरातलमें ऐसी कठिन परीक्षामें आजतक कोई उत्तीर्ण नहीं हुआ। सतीके इस प्रतापको देखो, इस महत्त्वके गौरवको मनमें लाओ, इन देवीने जो अहर्निश तुम्हारे चिन्तन और नाम-स्मरणका व्रत पालन किया है, उसके फल-स्वरूप इनको अपनी हार्दिक श्रद्धाकी पात्री बनाओ।"

यह कह ब्राह्मणवेशी अग्निदेव अन्तर्धान हो गये। रामचन्द्रने, हृदयसे प्रसन्न हो, कहा,—"देवि! प्रियतमे! साध्वी! आज जो काम तुमने कर दिखाया है, वह त्रिकालमें भी सम्भव नहीं है। मैं तुम्हें आज भी वैसाही प्यार करता हूँ, जैसा पहले करता था। मेरे हृदयके सिंहासनपर तुम्हारी देवी-मूर्त्तिके सिवाय अन्यका अधिकार नहीं है। वहाँ तुम्हारी पूज्य प्रतिमा सदा एकभावसे विराजती रही है; परन्तु लोकापवादसे बचने और समाजके नियम तथा धर्म्मके निर्वाहके लियेही मैंने यह

कठोरता, हृदयपर पत्थर रखकर, अवलम्बन की थी। आओ, भगवति! मेरी आँखोंपर उसी तरह बैठो, जैसे बैठनेका तुम्हें सदासे अधिकार है। लोकमें तुम्हारी इस कठिन परीक्षाकी कथा युग-युगान्तरतक गायी जाय, संसार सतीका माहात्म्य समझे और आर्य्य-महिलाएँ इस पुण्यका गौरव देख शिक्षा ग्रहण करें, इसीलिये देवताओंने मेरी ऐसी मति फेर दी थी, कि मैंने तुम्हारी ऐसी विकट परीक्षा ली। क्या अपने सदाके स्नेहशील स्वामीका एकमात्र लोक दिखावेके लिये किया हुआ अपमान तुम न भूल जाओगी? मुझे न क्षमा करोगी?"

रामचन्द्रके ये वचन सुनतेही सीताको सारी ग्लानि मिट गयी, क्षण-भर पहले जिस भयानक ज्वालासे उनका हृदय जल रहा था, वह एकायक ठंडी हो गयी; वे पुलकित होकर उनके चरणोंपर गिर पड़ीं और बोलीं,—"नाथ! यह कैसी बात है! किससे क्षमा माँगते हैं? अपने चरणोंकी दासीसे? आजन्म-किङ्करीसे! यह कहना आपको शोभा नहीं देता, उल्टा मेरे सिरपर पाप चढ़ता है। आपकी यह कठोर परीक्षा मेरे लिये कितनी मङ्गल-कारिणी हुई है, यह मैं अब समझ रही हूँ। आप ऐसा न करते, तो मैं कैसे संसारको अपनी सच्चरित्रताका प्रमाण दे सकती? संसारके लोगोंको कुछ कहने सुननेका अवसर न देकर आपने मेरा जो मङ्गल किया है, उसके लिये मैं कहाँतक आपकी बड़ाई करूँ? यह निठुराई मेरी भलाईही करनेवाली हुई।"

फिर तो स्वामी और स्त्रीका वह वर्षभरके विछोहके बादका

सम्मिलन इतना सुखकारक हो उठा, जिसकी सीमा नहीं। रामचन्द्रके सैनिक, सेनापति और हित-मित्र हर्षसे जय-जयकी प्रचण्ड ध्वनि करने लगे। उन्होंने सीताके सतीत्वका जो तेज उस समय आँखों देखा, वह जीवनमें फिर कभी न भूला। "धन्य भगवति सीता! धन्य तुम्हारा पातिव्रत!" यही बात बार-बार सबके हृदयसे निकलकर मुँहपर आने और दिग्-दिगन्तमें फैलने लगी।

सीताने पुनः पतिके चरणकमलोंके दर्शन पाये, उनके समीप बैठनेका सौभाग्य प्राप्त किया, अतएव वे धन्य-धन्य हो गयीं। उनकी वह प्रसन्नता, वह आनन्दोल्लास, हर्षकी अधिकताके मारे चरणोंकी वह चञ्चलता, वाणीकी वह विकलता, नयनोंकी वह मधुरता और मुखमण्डलकी वह बढ़ी हुई ज्योति देख, यही मालूम होता था, मानों चातकीने बूँद पायी, जन्म-दरिद्र राव हो गया, मरते हुएके मुँहमें अमृत पड़ गया, सूखती हुई लताका सरस नीरसे सिञ्चन हो गया!

रामचन्द्रने लङ्काका राज्य विभीषणको दे दिया। लक्ष्मणके हाथसे उसको राजतिलक दिया गया। कई दिन बड़े आनन्द-उत्सव और आमोद-प्रमोदमें बीते। जिसने जो माँगा, उसने वही पाया। याचक अयाची हो गये, दरिद्र दाता हो गये, रङ्क राव बन गये। रामचन्द्रने शत्रुको हराकर, ऐसे परिश्रमसे जीती हुई लङ्का भक्त विभीषणको बिना मोह-मायाके दान कर दी!

इन्हीं दिनों रामचन्द्रने हिसाब लगाकर देखा, कि चौदह वर्ष पूरे होनेको आ गये हैं, अब अयोध्याको लौट चलना चाहिये; नहीं तो अवधि पूरी होनेपर भी मुझे आया हुआ न देख, भरत भारी अनर्थ कर बैठेंगे—वे निश्चयही प्राण-त्याग कर देंगे। यह विचार मनमें उदय होतेही रामचन्द्रने विभीषणसे कहा,—"भैया! मैं तो बड़ी विकट समस्यामें आ फँसा हूँ। मुझे अबतक इस बातका स्मरणही न रहा, कि मेरे वनवासकी अवधिके अब दोही-चार दिन रह गये हैं। अब मैं इतनी जल्दी कैसे अयोध्या पहुँच सकता हूँ? उधर भरत मेरे आनेके दिन बड़ी उत्कण्ठासे गिन रहे होंगे। समयपर नहीं पहुँचनेसे वे निराश होकर प्राणत्याग कर देंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

कहते-कहते रामचन्द्र चिन्तासे चूर हो चुप हो रहे। उन्हें [illegible] विभीषणने कहा,—"भगवन्! आप व्यर्थ चिन्तित न हों। मे[illegible]ाई, रावण, स्वर्गसे पुष्पक नामका एक विमान देवताओंसे छ[illegible]कर, लाये थे। वह अबतक हमारे यहाँ पड़ा हुआ है। वह बड़ाही शीघ्रगामी है। वैसा विमान संसारमें दूसरा नहीं है। वह स्वयं विश्वकर्माके हाथकी कारीगरी है। उसके द्वारा मेरे स्वर्गीय भ्राताने बड़ी-बड़ी यात्रायें सहजही कर डाली थीं। उसपर सवार हो आप नियत समयके भीतर अवश्यही अयोध्या पहुँच सकेंगे।"

यह कह विभीषणने विमान लानेकी आज्ञा दी। उसके आतेही सीता, राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण और हनुमान् बारी-बारीसे उसपर जा सवार हुए। जब सब लोग सुख-

पूर्वक विमानपर बैठ चुके, तब विभीषणने रामचन्द्रकी आज्ञा ले विमानका यन्त्र घुमाया, जिससे वह हहास करता हुआ एक विशाल-काय पक्षीकी भाँति आकाशमें उड़ चला। नीचे खड़े हुए लोग तालियाँ पीटने और "जय, जानकी-जीवनकी जय!" कहते हुए हर्षध्वनिसे आकाश कम्पित करने लगे।

विमान उड़ता हुआ जाने लगा। देखते-ही-देखते वह किष्किन्धा आ पहुँचा। सीतादेवीके आग्रहसे थोड़ी देरके लिये वह नीचे उतारा गया और सुग्रीवके घरकी स्त्रियाँ भी उसपर चढ़ा ली गयीं। तदनन्तर विमान फिर तीव्रवेगसे उड़ता हुआ जाने लगा। रामचन्द्र ऊपरहीसे सीताको उन स्थानोंको दिखलाने लगे, जहाँ कहीं तो उन्होंने उनके साथ रहकर दुःखके दिन सुखसे बिताये थे और कहीं उनसे बिछुड़ जानेपर रो-रोकर आँसुओंसे भूमि भिगोयी थी। गये दिनोंकी याद दिलानेवाले उन स्थानोंका वर्णन सुन और बहुत ऊँचेसे देखनेके कारण उनकी कुछ निरालीही शोभा निरखकर सीताके मनमें एक साथही हर्ष, शोक और विस्मयके भाव उत्पन्न होने लगे।

इसी प्रकार उड़ता हुआ विमान प्रयाग पहुँचा। वहाँ पहुँचतेही रामचन्द्रको अपने वनवासके आरम्भिक दिनोंकी याद आ गयी और उन्होंने एक बार फिर भरद्वाज-ऋषिके आश्रममें जाना चाहा। अतएव विमान फिर नीचे उतारा गया। ऋषिने बड़े प्रेमसे उन लोगोंका स्वागत किया और रामचन्द्रके मुँहसे वन-वासका सारा हाल सुन, सुख और दुःख दोनोंका समान अनुभव किया। कई बातोंका विचारकर सबकी सलाहसे हनुमान्

यहींसे सब लोगोंके वनवाससे लौट आनेका संवाद देनेके लिये अयोध्या भेज दिये गये।

हनुमान् बहुत शीघ्र अयोध्यामें आ पहुँचे। नन्दीग्राममें भरतके पास जा, उन्होंने सबके आनेका संवाद कह सुनाया। सुनतेही भरत आनन्दसे अधीर हो उठे और उसी क्षण उन्होंने नगरभरमें आनन्द-उत्सव करनेके लिये शत्रुघ्नको आज्ञा दे दी। सारी अयोध्यामें आनन्दके बादल उमड़ आये। राह-बाट, गली-कूचे, सर्वत्र ध्वजा-पताकाएँ फहराती हुई दिखाई देने लगीं। राज-द्वारपर नौबत बजने लगी। सन्तान-वियोगिनी मातृ-भूमि अपने प्यारे बच्चोंके स्वागतके लिये दोनों हाथ पसारकर खड़ी हो गयी!

बड़ी उत्कण्ठासे विमानके आनेकी बाट देखी जाने लगी। सारी अयोध्याके लोग ऊपरको मुँह उठाये आकाश-मार्गकी ओर देखने लगे। छज्जों, मुँडेरों, अटारियों और छतोंपर बैठी हुई पुर-नारियाँ बड़ी बेचैनीके साथ आकाशकी ओर एकटक देखने लगीं। रास्तों, बाग-बगीचों और मैदानोंमें असंख्य मनुष्य जमा होकर आकाशकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे।

देखते-देखते विमान अयोध्याके ऊपर चीलके समान मँडराता हुआ दिखाई पड़ा। सबके हृदय चन्द्र-दर्शनसे उमड़े हुए समुद्रकी तरह उछल पड़े। मातृ-भूमिकी वह अलौकिक शोभा और पुर-वासियोंका वह अद्भुत प्रेम देख रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताके मनमें बड़ाही आनन्द हुआ।

यथासमय विमान नीचे उतरा। बहुत दिनोंके बिछुड़े एक

दूसरेसे मिले। बार-बार परस्पर आलिङ्गन करते हुए भी उन्हें तृप्ति नहीं हुई। अपने वीर पुत्रोंको नाना सङ्कटोंसे उद्धार पाकर आया हुआ देख, माताओंको जो अपरिसीम आनन्द हुआ, वह लिखकर बतलाना मानों मातृ-स्नेहके अथाह समुद्रकी थाह लेनेकी व्यर्थ चेष्टा करना है!

रामचन्द्रने भरत और शत्रुघ्नको गले लगाकर जो अद्भुत भ्रातृ-स्नेह प्रकट किया, नेत्रोंमें आँसू लाकर उनके निश्छल, निश्चल और निस्सीम स्नेहकी जो बड़ाई की, उसे देखकर सुग्रीव और विभीषणको बड़ा पश्चात्ताप हुआ, कि एक ये भी भाई-भाई हैं और एक हम भी थे, जो अपने भाईको मृत्यु-पथका पथिक बना आये!

कदाचित् इस भ्रातृ-प्रेमको देख, भारतके उन अभागे निवासियोंको भी ग्लानि उत्पन्न हो जाय, जो इस पवित्र सम्बन्धका तिरस्कार कर छोटी-मोटी बातोंपर आपसमें उलझ पड़ते और "नास्ति बन्धुसमो रिपुः"का * पाठ पढ़ने लगते हैं, तो भारतकी बहुत कुछ भलाई हो। आजकल जितने घर बिगड़ते दिखाई देते हैं, वे सब प्रायः बन्धु-विरोधकेही कारण। भाईका मोल सब लोग समझने लगें, तो हम इतने गिरकर भी किसी दिन उठ सकते हैं।

सबसे मिलने-जुलनेके बाद रामचन्द्रने सुग्रीव और विभीषण आदिका सबसे परिचय कराया और सबलोग उन्हें अपने घरके आदमी समझने लगे। उन्होंने अयोध्यामें जो आदर-

* साधारण बोलचालमें भी कहा करते हैं, कि 'न भाईसा हित न भाईसा बैरी।'

सत्कार पाया, उससे वे परम सन्तुष्ट हुए और सभी शोक और ग्लानिके भावोंको भूल गये।

जिन कैकेयीने यह सारा विपत्तिका नाटक रचा था, उनके पास जा, जिस समय राम, लक्ष्मण और सीताने प्रणाम किया, उस समय वे मारे लज्जा और सङ्कोचके मरने लगीं। रोते-रोते उनकी घिग्घी बँध गयी। रामचन्द्रने उन्हें तरह-तरहसे समझाया और कहा,—"माता! तुम क्षण-भरके लिये भी ऐसा न सोचना, कि मैं तुमसे कुछ रुष्ट हूँ। तुम मुझे कितना प्यार करती हो, यह मुझे भली भाँति मालूम है; पर मेरे कर्म्म-फलको तुम क्या करतीं? इतना सब होना बदा था, इसीसे तुम कुटिल मनुष्योंके बहकावेमें पड़ गयीं; पर मैं यह जानता हूँ, कि ये चौदह वर्ष तुमने मन-ही-मन बहुत कष्ट सहकर बिताये हैं और पछतावेकी आगसे जलकर तुम्हारा हृदय फिर वैसाही सोनेकासा खरा हो गया है। भला भरत जैसे स्नेही भाईकी माताके प्रति मेरा क्षण-भरके लिये भी दुर्भाव हो सकता है? वैसा होनेसे, माता! मेरे सारे पुण्य क्षीण हो जायँगे, नरककी यन्त्रणासे भी उस पापका प्रक्षालन न होगा।" यह सुन, कैकेयीका दुःख दूर हो गया—उनकी सारी ग्लानि मिट गयी।

इस प्रकार सबको आनन्दमें मग्न करते हुए वे तीनों वनवासी सबसे मिलते-जुलते, खाते-पीते और हास्य-परिहास करते हुए विश्राम करने चले गये। सबके इस आनन्द-आमोदका दिन-भर उपभोग कर, सूर्य्यदेव अस्ताचलकी चोटीपर जा पहुँचे और नक्षत्र-चन्द्रमाको भी इस सुखका प्रसाद पानेका अवसर

गये। चन्द्रदेव अयोध्याके इस सुहागपर सिहाते हुए सन्तोषकी हँसी हँसने लगे। बड़ी रात बीतनेपर, सब लोगोंने निद्रा-देवीकी शरण ली। जबतक लोग जगे रहे तबतक इस आनन्ददायक मिलनकीही चर्चा करते रहे।

धीरे-धीरे आनन्दके साथ दिन बीतने लगे। नित्यके आमोद-उत्सवोंके कारण अयोध्या आनन्दका आगार बन गयी। इसी बीच एक दिन वशिष्ठजीने सब सभासदोंको बुलाकर कहा, "भाइयो! जबसे रामचन्द्र वनसे लौट आये हैं, तबसे वे राज्यका सब काम धाम देख रहे हैं सही, तोभी उनके राज्याभिषेककी रीति अभीतक पूरी नहीं की गयी। अतएव वह भी हो जानी चाहिये। अभीतक भरतकी स्थापित उनकी खड़ाऊँही सिंहा-सनकी शोभा बढ़ा रही है, अब वे अपने चरण-कमलोंसे उसे कृतार्थ करें, यही मेरी इच्छा है।"

मुनिकी यह बात सबने पसन्द की और उसी समय मन्त्रियोंने अभिषेककी तैयारी करनेकी आज्ञा दे दी। सभी राजाओं, हित-मित्रों, सगे-सम्बन्धियों और ऋषि-मुनियोंको नि-मन्त्रण देनेकी व्यवस्था कर दी गयी।

यथासमय रामचन्द्र राजगद्दीपर बैठे। चौदह वर्षका सूना सिंहासन फिर अलंकृत हुआ। उस समय भरतने उनकी वह खड़ाऊँ उनके पैरोंमें पहनाते हुए कहा, "पूजनीय भाई साहब! आपकी इन चरण-पादुकाओंको आपके स्थानमें रखकर दासने

सीता-वनवास

१

राजा प्रजाका पिता है'—यही वाक्य ध्यानमें रखते हुए महाराज रामचन्द्र न्याय-पूर्वक अपनी प्रजाका पालन ार रहे थे। राज्यका प्रत्येक विभाग चतुर, न्यायी और र्म्मात्मा मन्त्रियोंके हाथमें था। उनके तीनों भाई राज्यके भेन्न-भिन्न विभागोंपर तीखी दृष्टि रखते हुए कहीं भी किसी रहकी त्रुटि या अन्याय नहीं होने देते थे। उनकी सारी जा सुखी थी—सभी प्रसन्न और धन-धान्यसे परिपूर्ण दिखाई ते थे। न कोई दुःखी था न दरिद्र। किसीके मुँहसे राज्य-ासनकी कोई बुराई निकलती हुई नहीं सुनाई देती थी। एक र्म्मात्मा राजाकी प्रजा जैसी न्यायी, धर्म्मात्मा और नीतिके नुसार चलनेवाली होनी चाहिये, रामकी प्रजा वैसीही थी। ्सिये, उनके उस सुख-सौभाग्य-मय सुराज्यका वर्णन करते ुए कवि कहते हैं:—

राम राज्य बैठे त्रय लोका ॐ हर्षित भयेउ गयेउ सब शोका॥
बैर न कर काहू सन कोई ॐ रामप्रताप विषमता खोई॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा ॐ रामराज्य काहू नहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती ॐ चलहिं स्वधर्म्म-निरत श्रुतिरीती॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ॐ सब सुन्दर सब निरुज-शरीरा॥

सदा दुःख उठातेही बीता ! हाय ! क्यों नहीं मैं चिरजीवनके लिये वनमेंही रह गया ? क्यों अपने सिरपर राज्यका यह भार और प्रजा-रञ्जनका उत्तरदायित्व लेने गया ? प्राणेश्वरी सीते ! तुम्हारे भाग्यमें क्या सब दिन दुःख भोगनाही लिखा था ? रावणके यहाँसे उबर आनेपर तुमने सोचा था, कि अब इस जीवनमें तुम्हें फिर दुःख नहीं देखना पड़ेगा, परन्तु हाय ! आजही तुम्हारी सुख-निशाका अन्त हो जायगा, तुम उससे भी घोर दुःखमें पड़ जाओगी, यह बात किसे मालूम थी ? मैं जानता हूँ, कि तुमसी सती-साध्वी इस धरा-धाममें दूसरी नहीं है, तोभी लोकापवादसे बचनेके लिये मैं तुमको त्याग करूँगाही, यह निश्चय है। चाहे तुम्हारे वियोगमें मैं घुल-घुलकर मर जाऊँ, परन्तु प्रजाके प्रति राजाका जो धर्म्म है, उसका

कारणसे भैया ऐसे घबरानेवाले नहीं हैं—यह बात वे अच्छी तरह जानते थे। कुछ देरतक तो वे चुपचाप खडे रहे, पर जब उनकी घबराहट सीमा पारकर गयी, तब लक्ष्मणने कहा, "भैया ! आज आपका यह क्या हाल हो रहा है ? आपके नेत्रोंसे आँसू क्यों गिर रहे हैं ? अवश्यही कोई बडी भारी दुर्घटना हुई है। अतएव शीघ्र कहिये, नहीं तो हमलोग मारे चिन्ताके मरे जाते हैं।"

यह सुन रामचन्द्र, आँसू-भरे नेत्रोंसे भाइयोंकी ओर देख, सिसकते हुए कहने लगे, "भाइयो ! आज मैं बडी भारी विपत्तिमें हूँ। मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ, कि मुझसा अभागा और कोई नहीं। आज मैंने सुना है, कि मेरी प्रजा सीताके ऊपर कलङ्क लगाती और कहती है, कि पराये पुरुष द्वारा हरी हुई और उसके यहाँ सालभरतक रही हुई सीताको घरमें लाकर मैंने बडा भारी अधर्म्म किया और अपने निर्म्मल कुलमें धब्बा लगाया है। अतएव, मुझे अपनी प्राणप्रिया सीताको घरसे निकाल देना पडेगा; नहीं तो प्रजा सन्तुष्ट न होगी। मैं बार-बार लोगोंसे कहा करता था, कि प्रजाके सन्तोषके लिये मैं सीतातकको त्याग कर सकता हूँ। मैं देखता हूँ, कि भगवान् मेरी उसी प्रतिज्ञाकी परीक्षा ले रहे हैं। हाय ! ऐसी वज्रवाणी सुननेसे पहलेही मेरी मृत्यु क्यों नहीं होगयी ? अच्छा, जो भाग्यमें है, वही हो रहा है; इसमें अपना क्या वश है ! लक्ष्मण ! तुम कलही सीताको मुनिवर वाल्मीकिके तपोवनमें पहुँचा आओ। उन्होंने मुझसे वन भ्रमणके लिये अपनी इच्छा भी प्रकट की है और मैंने उन्हें आज्ञा भी दे रखी है। इसी

वहाँसे तुम उन्हें सदाके लिये अयोध्याके राजमहलोंसे दूर कर आओ।" यह कहते-कहते उनका गला भर आया, बोली बन्द हो गयी और आँखें सजल हो उठीं।

रामचन्द्रकी ये बातें सुन तीनों भाई शोकसे अधीर हो चुपचाप रोने लगे। जब रोते-रोते मन कुछ ठिकाने हुआ, तब लक्ष्मणने कहा, "भैया! आप यह क्या सच कह रहे हैं? अथवा मैं आपकी सभी आज्ञायें सिर झुकाकर पालन करता हूँ, या नहीं, इसकी परीक्षा ले रहे हैं? भाभी रावणके यहाँ किस तरह रहीं, वहाँसे आनेपर किस प्रकार साक्षात् जलती चितामें प्रवेश कर उन्होंने अपनी निष्कलङ्कता प्रमाणित कर दी, वह क्या आप भूल गये? यदि नहीं भूले, तो फिर आप क्यों ऐसे-वैसे आदमियोंके कहनेसे उनका त्याग करेंगे?"

रामचन्द्र कहने लगे,—"भाई! सीतापर मेरा अटल विश्वास है, उनकीसी देवी-मूर्त्तिको पापकी छायातक स्पर्श करनेका साहस नहीं कर सकती, यह मेरी ध्रुव धारणा है; उनकी अग्नि-परीक्षा भी मैं इस जीवनमें कभी न भूलूँगा; परन्तु अयोध्या-वासियोंने तो वह परीक्षा अपनी आँखों नहीं देखी? फिर वे क्यों मानने लगे? अतएव जिन प्रजावर्गोंको पालने-पोसने और प्रसन्न रखनेके लिये मैं धर्म्मसे बाध्य हूँ, उनका मन मैं अवश्यही रखूँगा। तुम क्या यही सलाह देते हो, कि मैं उनकी बातकी उपेक्षा करूँ?"

यह है, कि वह अग्नि-परीक्षा तो कुछ गुप-चुप नहीं हुई थी, लाखों आदमियोंने आँखें पसारकर देखी थी ? फिर क्या चाहिये ? रही लोगोंके निन्दा करनेकी बात। सो जो लोग बुरे हैं, जिनका व्यवसायही परनिन्दा है, वे तो आप लाख करेंगे, तोभी निन्दा किये बिना न मानेंगे। ऐसे लोगोंको कौन प्रसन्न कर सकता है ? यों तो आपकी जो आज्ञा होगी, उसका पालन मैं अवश्यही करूँगा ; परन्तु इतना निवेदन किये बिना मेरा जी नहीं मानता, कि ओछे लोगोंकी बातमें पड़ना, उनके इशारेपर चलना, कभी अच्छा नहीं। जब आपकी आत्मामें भाभीके सम्बन्धमें किसी तरहका सन्देह या विकार नहीं है, तब आप संसारकी निन्दा-स्तुतिकी क्यों परवा करते हैं ?"

यह सुन रामने कहा,—"भाई ! यह कठिन कर्म्म करते हुए मैं कितनी मानसिक वेदना पा रहा हूँ, वह तुम्हें क्या बतलाऊँ ? मेरे प्राणोंके पर्दे-पर्देमें शोक और दुःखकी आग सुलग रही है ; पर बहुत कुछ सोचने-विचारनेके बाद मैंने यही स्थिर किया है, कि सीताको त्याग देनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। तुम कलही उन्हें पहुँचा आओ—इधर-उधर न करो। लेकिन देखना, लौटकर आनेके पहले उन्हें कदापि न बतलाना, कि मैंने उनका त्याग किया है। जाओ, मैं अब दूसरी बात नहीं सुनना चाहता।"

यह कह रामचन्द्र चुप हो गये। तीनों भाई रोते हुए वहाँसे चले गये। सीतादेवीकी निर्दोषता और रामकी इस कठोर व्यवस्थाकी बात सोच-सोचकर उनका हृदय फटा जाता था; परन्तु बड़े भाईकी आज्ञासे उन्हें मौनही रह जाना पड़ा।

ऐसी क्या आपत्ति आ पड़ी है, कि यह अधीर होकर रोरही है। हमलोगोंने उससे कोई बात नहीं पूछी, सीधे आपके पास संवाद देने चले आये।"

यह सुन वाल्मीकि वहाँ आ पहुँचे, जहाँ सती-शिरोमणि सीता, पतिके द्वारा निष्ठुरता-पूर्वक निर्वासित हो, आर्त्तस्वरसे रो रही थीं। आतेही वाल्मीकि बोले,—"बेटी! चुप हो। मैंने अपने तपोबलसे तुम्हारे यहाँ आनेकी बात जान ली है। तुम राजा जनककी पुत्री और महाराज रामचन्द्रकी पत्नी हो। आओ, तुम मेरे आश्रममें चलकर रहो। मेरे भाग्य जग गये, जो किसी बहाने तुमसी सतीका यहाँ आना हुआ। बेटी! आजसे मैं मैं तुम्हें अपनी कन्याकी भाँति रखूँगा—तुम कदापि यह सोचकर न डरो, कि यहाँ, इस भयानक जङ्गलमें, तुम्हारा कोई सहायक नहीं है। रघुकुल-राजलक्ष्मी! मैं आशीर्वाद करता हूँ, कि तुम्हारे रघुकुल-तिलक सन्तान उत्पन्न हों।"

डूबती हुईने सहारा पाया। सीताने, कृतज्ञता और भक्तिके भावोंसे प्रेरित हो, मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और यथाशक्ति शोकका वेग सम्हाल उनके पीछे-पीछे चलीं। राजप्रासाद-विहारिणी सीता आज फिर कुटीर-वासिनी हुईं, मुनि-कन्याएँ उनकी सहेलियाँ हुईं, वनके पशु-पक्षी उनके दुःख-शोकके श्रोता हुए! सीताका कुल-लक्ष्मी-जनोचित व्यवहार, अटल पातिव्रत, इतनी निष्ठुरता दिखलानेपर भी पतिके विषयमें एक भी कड़वी बात मुँहसे न निकालना, देख-देखकर ऋषि-पत्नियाँ और बालिकाएँ उस देवीपर अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति और प्रीति करने लगीं।

महर्षि वाल्मीकिने कहा, "बेटी! आजसे मैं तुम्हें अपनी कन्याकी भाँति रखूँगा।" [पृष्ठ—१०४]

(८)

यथासमय उसी तपोवनमें सीताके गर्भसे दो सुन्दर बालक उत्पन्न हुए। तपोवन आनन्द-उल्लाससे भर उठा। उत्सवके जो सब सात्विक प्रकार थे, वे सब काममें लाये जाने लगे।

बालकोंके जन्म लेतेही सीता शोकसे अधीर हो उठीं। यह देख, मुनि-कन्याएँ कहने लगीं,—"सीता! यह क्या? तुम्हें दो देवताकेसे सुन्दर, कामदेवकेसे कमनीय बालक जन्मे हैं; तुम्हारा भाग्य कैसा अच्छा है! तुम ऐसे अवसरपर प्रसन्न होनेके बदले शोक क्यों करती हो?"

यह सुन सीताने कहा,—"सखियो! पुत्र-जन्म नारीके लिये बड़े सौभाग्यका विषय है, यह मैं मानती हूँ; परन्तु किस अवस्थामें? मैंने तो जीवनभरके लिये अपने सारे सुखोंका विसर्ज्जन कर दिया है, मेरी सब साध मिट गयी है। मुझसे आनन्द और प्रसन्नताने सदाको विदा ले ली है। हाय! यदि ये अभागे मेरे गर्भमें न होते, तो मैं ये दुःखके दिन गिननेके लिये काहेको जीती रहती? जैसेही लक्ष्मणने वह वज्रसी वाणी मुझे सुनायी थी, वैसेही छाती कूटकर मर न जाती? गङ्गामें डूब न गयी होती? तब काहेको यह दुखिया जीवन और कलङ्कित मुखड़ा लेकर संसारके सामने आती?" यह कहती हुई सीता पुक्का फाड़कर रोने लगीं।

मुनि-कन्याओंसे भी न रहा गया—वे भी रो पड़ीं; परन्तु शीघ्रही अपनी आँखें पोंछ, सीताको धीरज बँधाती हुई बोलीं,—

"सीता ! पिताजी कहते हैं, कि जल्दीही तुम अयोध्यामें बुला ली जाओगी। महाराज फिर तुम्हें अपनी शरणमें रख लेंगे। देखो, ऐसी निराश न हो, एकदम अधीर मत बनो।"

इस प्रकार बातें होही रही थीं, कि तुरतके पैदा हुए वे दोनों बच्चे रोने लग गये। फिर तो मातृस्नेहने सब कुछ भुला दिया! सारे दुःख-शोक भूल, सीता उन बच्चोंको दूध पिलाने लगीं! ऋषि-कन्याएँ आधी प्रसन्नता और आधी उदासी लिये वहाँसे उठकर अन्यत्र चली गयीं।

उस दिनसे रामचन्द्रकी मूर्त्तिके समान वे दोनों बच्चेही सीताकी घोर अन्धकारमयी दुःख निशाके युगल चन्द्रमा हुए। उन्हेंही देख-देखकर वे अपनी विपत्तिके दिन किसी किसी तरह बिताने लगीं। वाल्मीकिने उन बालकोंके जन्म-संस्कार ठीक उसी भाँति किये, जिस तरह वे अपनी कन्याके पुत्र उत्पन्न होनेपर करते।

धीरे-धीरे बच्चे शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके चन्द्रमाकी नाईं बढ़ने लगे। बड़े स्नेहसे सारे तपोवनके लोग उन्हें खिलौनेकी भाँति हाथोंहाथ लिये फिरने लगे।

परन्तु राम विरह-दुःखिता सीताका मन किसी भाँति सुखी नहीं होता था। वे सदा पतिपदोंका ध्यान करती हुई इस दारुण वियोगकी चिन्तामें घुली जा रही थीं। उनका वह सोनेकासा चमकता हुआ रङ्ग उड़ गया और वह शरीर, जो शोभाकी खान तथा सौन्दर्यका भाण्डार मालूम होता था, बेरङ्ग बेडौल दि[illegible]ई देने लगा। वे दिन-दिन छीजने लगीं।

लव-कुश और सीता ।

'वे दोनों बच्चेही सीताकी घोर अन्धकारमयी दुःख निशाके युगल चन्द्रमा हुए ।'

Burman Press Calcutta

(पृष्ठ—२०८)

दिन दुःखके हों या सुखके, वे रहते नहीं, चलेही जाते हैं। विरहिणी सीताके सिरपरसे भी कितनी वर्षाकी प्रचण्ड वारि-धाराएँ, ग्रीष्मका प्रखर उत्ताप और शीतकी कँपकँपी आकर चली गयी। दिनपर दिन, महीनेपर महीना, वर्षपर वर्ष बीत गये। किन्तु साध्वी सीताके मनमें कोई विकार न हुआ। स्थानका दूरत्व अथवा समयका प्रवाह उनके प्रेममें अन्तर न डाल सका। "मेरे पतिदेव सुखी हों"—यही एक कामना उनकी तपस्याका आधार थी। उनके सभी व्रतोपवास इसी अभिलाषासे होते थे, कि पतिके चरणोंमें मेरी जो प्रीति है, वह दिन-दिन बढ़ती रहे।

देवता दर्शन दें या न दें, पर भक्त उनके नामपर भक्तिके फूल चढ़ानेसे थोड़े चूकता है? सीताके देवता भी उनसे दूर हैं; उन्होंने उनको अपने चरणोंकी सेवासे दूर कर जङ्गलमें खदेड़ दिया है; पर सीताका मन सदाही उन चरणोंमें चञ्चरीक होकर मँडराया करता है। सीताका तन वनमें है, पर मन रामके चरणोंमेंही है; परन्तु अपने शरीरका यह अभाग्य भी सीताको परम सन्ताप दे रहा है!

जबतक बच्चे बिल्कुल अबोध रहे, तबतक सीताको उनके लालन-पालनमें कुछ अधिक मन लगाना पड़ा; परन्तु,जब वे चलने-फिरने लगे; तब उन्होंने उनकी चिन्तासे भी मनको फेर लिया और वे एकमात्र पतिदेवके चरणोंके ध्यानमेंही लीन रहने लगीं। उन्हें दिन-रात एकही काम रह गया—पतिका स्वरूप-चिन्तन और गुण-स्मरण करते हुए अकेलेमें बैठकर अपने अभाग्यपर फूट-फूटकर रोना!

काल पाकर सभीका शोक कम हो जाता है, परन्तु सीताके रोएँ-रोएँमें जो विकट शोक प्रवेश कर गया था, वह नित्य नया होता जाता था। चिन्ता, शोक और मनोवेदनाने सीताको सुखाकर काँटा बना दिया। वे जीतेही-जी एकदम मरी हुईके समान दिखाई पड़ने लगीं!

इसी तरह सीताने अपने दुर्भाग्यके बारह बरस बिता दिये!

सीताका पाताल-प्रवेश

(१)

प्रजाकी प्रसन्नताके लिये रामचन्द्रने अपनी प्राणोपमा पत्नी और सती सहधर्म्मिणी सीताको वनमें भेज तो दिया, पर उसी दिनसे उनके लिये सुख सपना हो गया। उनके जीवनका आनन्द सदाके लिये विदा हो गया। वे जिधर देखते, उधरही उन्हें अन्धकार दिखाई पड़ता था। लक्ष्मण, सीताके सामने की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार, सदा उनका जी बहलानेकी चेष्टा किया करते थे; पर वह दुःख, वह पछतावा, वह हाहा-कार क्या ऐसा-वैसा था, जो समझाने-बुझानेसे मिट जाता?

वे राज्यके सब काम-काज भली भाँति देखते, परन्तु वे जो कुछ करते ऊपरकेही मनसे करते। भीतर सीताका शोक सौ-सौ शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्त होकर सारा हृदय छेंके हुए था। क्या खाते समय, क्या सोते समय, क्या घरमें, क्या दरबारमें—सब दिन, सब समय उन्हें सीतादेवीकाही ध्यान बना रहता था।

"वह सरलताकी मूर्त्ति, धर्म्मका अवतार, सतीत्वकी प्रतिमा मेरे द्वारा इस प्रकार पैरोंसे ठुकरा दी गयी! जो फूल शिरकी शोभा बढ़ानेवाला था, वह यों चरणोंसे दल-मसल दिया गया! हाय! मैंने यह क्या कर डाला? तुच्छ

राज्यके लिये, सांसारिक मानापमानके विचारसे, मैंने उस अलौकिक रत्नका ऐसा अपमान किया! हाय! इस पापका क्या कोई प्रायश्चित्त नहीं है? सचमुच राज्य करना कोई हँसी-खेल नहीं—खाँडेकी धारपर चलना है। न मालूम, किस सुखके लिये लोग राज्यका अधिकारी होना चाहते हैं? इसी राज्यके लिये मुझे मनुष्यता और ममता छोड़ देनी पड़ी—निर्दोष, निरपराधिनी सीताको छोड़ देना पड़ा। आनेवाली सन्तानें मुझ जैसे क्रूर पतिके नामपर क्यों न गालियाँ देंगी? क्यों न वे मुझे निष्ठुर, निर्दयी और निरपराधको सतानेवाला समझेंगी?" यही सब सोच सोचकर रामचन्द्र अपने जीवनके दिन बड़े कष्टसे बिता रहे थे। राज्य-भोग उन्हें विषके समान प्रतीत हो रहा था। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न उन्हें तरह-तरहसे धीरज धराते थे, परन्तु उनका मन किसी तरह न मानता था।

यद्यपि उनको ऐसा अपार शोक था, तथापि वे राज्य कार्यमें किसी प्रकारकी त्रुटि न होने देते थे। भला, जिस प्रजारञ्जनके लिये उन्होंने सीतासी सती त्यागी, उसी काममें वे किस प्रकार शिथिलता प्रकट कर सकते थे? बाहरसे सब लोग देखते, कि वे पूर्ववत् धैर्य्यशील, कार्य्य-परायण और कर्त्तव्य निष्ठ हैं, पर भीतर अन्त सलिला फल्गुकी भाँति अनन्त शोक-प्रवाह निरन्तर जारी रहता था।

धन्य सीते! ऐसा साधु, ऐसा नीति निष्ठ स्वामी पानेका तुम्हाराही सौभाग्य था! इस धरातलमें कौनसी रमणीने तुम्हारे

पति जैसा उदार, कर्त्तव्य-पालनमें दक्ष और धर्मके लिये सब कुछ छोड देनेवाला स्वामी पाया है ?

धीरे-धीरे समय बीतता गया। कितनेही दिन, सप्ताह, पक्ष, महीने और वर्ष आकर कालप्रवाहमें मिल गये, पर रामचन्द्रका दु खी हृदय किसी भाँति चैन न पा सका। वैसेही ऊपरसे धीर, पर भीतर अधीर, जीवन बीत रहा था। जिस दिन लक्ष्मण सीताको वनमें अकेली छोड, सूना रथ लिये हुए अयोध्यामें लौट आये, उस दिन जो शोकाग्नि उनके हृदयमें प्रज्वलित हुई, वह फिर किसी तरह न बुझ सकी।

वर्षों बीत गये, परन्तु न सीता आयीं, न रामने उनकी कोई सुध पायी। कौन जाने, वे प्रबल शोकके कारण गङ्गामें डूब मरीं या जङ्गली पशुओंका कलेवा बन गयीं ?

देखते-देखते बारह वर्षका समय निकल गया। राज्यका कार्य्य ज्योंका त्यों चलता रहा। प्रजाके सुख-सौभाग्यकी 'दिन दूनी रात चौगुनी' उन्नति होती रही। इस प्रकार बहुत दिनोंतक अपने सुन्दर शासनसे सबको सुखी करनेके कारण, रामचन्द्रकी आत्माको वह अलौकिक आनन्द प्राप्त होता था, जो एक कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तिही अपने कर्त्तव्यका पूरा-पूरा पालन करनेपर अनुभव कर सकता है, दूसरा नहीं समझ सकता, कि वह अपूर्व आनन्द कैसी स्वर्गीय सामग्री है।

एक दिन रामचन्द्रने भरी हुई सभामें अश्वमेध-यज्ञ करनेकी

अपनी अभिलाषा प्रकट की। यह सुन गुरु वशिष्ठने परम आनन्दित हो कहा,—"वत्स! तुम इस ससागरा पृथ्वीके अद्वितीय सम्राट् हो। तुमने जिस तरह अपना राज्य चारों ओर फैलाया है, वैसा आजतक कोई न कर सका। तुम्हारे राज्यमें प्रजा जैसी सुखी और सन्तुष्ट है, वैसी किसीके राज्यमें नहीं हुई। भला किसने प्रजाको इतनी स्वाधीनता दी थी, जितनी तुमने दे रखी है? राजाको जो कुछ करना चाहिये, वह सब तुम कर चुके और करते जाते हो। बड़े-बड़े राजा-महाराज सदासे अश्वमेध-यज्ञ करते आये हैं, अतएव यह काम भी तुम्हें अवश्यही करना चाहिये; फिर तुम्हें कुछ भी करनेको न रह जायगा।"

गुरुके इन वचनोंका सभी लोगोंने हृदयसे अनुमोदन किया। इसके बाद रामचन्द्रने अपने भाइयोंको बुलवाकर तुरतही यज्ञकी तैयारी आरम्भ कर देनेकी आज्ञा दे डाली; क्योंकि जब सबकी सम्मति होही चुकी और किसी तरहकी गड़बड़ी न रही, तब शुभ कार्य्यमें व्यर्थ विलम्ब क्यों किया जाय?

उन्हें इस प्रकार जल्दी करते देख, वशिष्ठने कहा,—"लेकिन महाराज! मैं एक बात बड़े असमञ्जसकी देख रहा हूँ। शास्त्रकारोंके वचनके अनुसार सभी धार्म्मिक कार्योंका अनुष्ठान सहधर्म्मिणीके साथही किया जाता है; परन्तु महारानी तो हैं नहीं, तुम यज्ञ कैसे करोगे?"

यह सुन रामने कहा,—"भगवन्! मेरी बुद्धि तो इस विषयमें काम नहीं करती; आपही कहिये, क्या करूँ?"

वशिष्ठने कहा,—"सिवा दूसरा विवाह करनेके, मुझे तो और कोई उपाय नहीं दिखाई देता।"

यह सुनतेही रामचन्द्रका चेहरा उतर गया। वे थोडी देरके लिये मौन हो रहे। उनके जिस हृदय सिंहासनपर सीता राज-राजेश्वरी-रूपसे विराजती थीं, उसपर वे किस प्रकार एक अन्य रमणीको बैठानेको तैयार होते? जिन नेत्रोंमें यह अलौकिक सती प्रतिमा बसी हुई थी, उनसे वे किस तरह किसी औरको देख सकते थे? उनको इस तरह चुप देख, सब लोग समझ गये, कि यह चुप्पी सम्मतिका लक्षण नहीं, अस्वीकारकाही परिचय देनेवाली है।

सबको अपनी ओर चुपचाप एकटक देखते हुए देख, रामचन्द्रने कहा,—"गुरुदेव! यह नहीं हो सकता। मैंने सीताके सिवा किसी अन्य रमणीकी ओर कभी देखातक नहीं है, देखा भी है, तो माताकी दृष्टिसे। पत्नी एक बारही ग्रहण की जाती है, बार-बार विवाह करना विडम्बना-मात्र है। मेरे विचारसे जो एक स्त्रीके रहते हुए, दूसरी स्त्रीका पाणिग्रहण करते हैं, वे अच्छा नहीं करते। अतएव, मैं आपकी यह बात नहीं मान सकता, क्षमा करेंगे। मैंने सोचते सोचते यही निश्चय किया है, कि सीताकी सोनेकी एक मूर्त्ति तैयार कराऊँ और उसीको सहधर्म्मिणीके स्थानपर रखकर यज्ञके सारे कार्य्य करूँ।"

यह सुन सबलोग "साधु-साधु कहने लगे। सारे सभासद सौ-सौ मुँहसे उनके इस एकपत्नी-प्रेमकी बड़ाई करने लगे।

देखते-देखते यज्ञकी सारी तैयारी पूरी हो गयी। देश-

विदेशके राजा-रईस, ऋषि-मुनि, ब्राह्मण-पण्डित, योगी-यती एक-एक करके अयोध्यामें आने लगे।

सीताकी आँखोंके तारे, उनके दुखिया जीवनके सहारे, वे दोनों यमज-कुमार लड़कपनसेही वाल्मीकिकी शिक्षा-दीक्षामें रहने लगे। मुनिने उनके नाम क्रमशः लव और कुश रखे। ब्राह्मण-ऋषियोंके बालकोंको जैसी शिक्षा दी जाती है, वैसी शिक्षा न देकर वे लड़कपनसेही उन्हें क्षत्रिय-बालकोंकीसी शिक्षा देने लगे; क्योंकि त्रिकाल-दर्शी मुनि यह जानते थे, कि एक दिन वे अयोध्याके राजसिंहासनको अलंकृत करेंगे; अतएव उनके लिये राजकुमारोंकीसी शिक्षाही उचित है।

मुनिराज उन राम-कुमारोंको पढ़ना-लिखना सिखानेके साथ-ही-साथ धनुर्वाण और अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करना भी सिखलाते जाते थे। धीरे-धीरे थोड़ी अवस्थामेंही वे दोनों बालक कई शस्त्रों और शास्त्रोंका हाल जान गये। उनकी माता परम दुःखिनी होनेपर भी अपनी सन्तानोंके भविष्यकी चिन्तासे एकबारगी अलग न थीं। वे भी सच्ची सुमाताकी भाँति उन्हें अच्छे-अच्छे उपदेश देतीं और उन्हें उनके पूर्वजोंकी कीर्त्ति-कथा सुनाकर वीरता, धीरता, गम्भीरता और अन्यान्य सद्गुणोंकी प्रवृत्ति उनके बाल-हृदयमें उत्पन्न करती थीं। इन दो सुयोग्य शिक्षकोंके हाथोंमें पड़कर वे दोनों बालक सचमुच सुशिक्षित होनेका परिचय प्रदान करने लगे।

वाल्मीकि-मुनि रामचन्द्रको बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। उन्होंने समझ लिया था, कि "इस युगमें रामकीसी आत्मा संसारमें दूसरी नहीं है। क्या घरमें, क्या राज-दरबारमें, सर्वत्र उनकी महिमाका विस्तार दिखाई देता है। वे आदर्श पुत्र, आदर्श बन्धु, आदर्श स्वामी, आदर्श राजा और आदर्श गृहस्थ हैं।" यही सोचकर उन्होंने रामचन्द्रका एक जीवन-वृत्तान्त सुललित छन्दोंमें लिखना आरम्भ किया था। लवकुशके बड़े होनेतक उनकी रामायण पूरी हो गयी—उसमें रामका आजतकका इतिहास लिख गया। अतएव मुनिने और-और विषयोंके साथ उन बालकोंको इस रामायणके विशेष-विशेष अंशोंको वीणाके सहारे गाना भी सिखला दिया। परन्तु मुनिने बड़ी चतुराईसे यह बात उनके कानोंतक न पहुँचने दी, कि जिन देवताका नाम 'रामचन्द्र' है, वेही उनके जनक और देवी सीताही उनकी जननी हैं। उन्हें यह नहीं मालूम हो पाया, कि उनकी यह दुखिया माताही मिथिला-महीपकी पुत्री और अयोध्या-नरेशकी प्राणप्रिया सीता हैं।

इसी तरह समय निकला जाता था। आजकल करते-करते बारह वर्षका समय व्यतीत हो गया। सीता मरणके किनारे पहुँची हुईसी मालूम पड़ने लगीं। उनके शरीरमें केवल हड्डी और चमड़ा रह गया। यह देख, मुनिराज वाल्मीकिने सोचा,— "अब सीताको उसके पतिके पास पहुँचाये बिना काम न चलेगा। उसके पुत्र भी बड़े हो चले हैं, इस समय यदि वे अपने पिताके पास रहकर राजधर्मकी शिक्षा न ग्रहण करेंगे, तो

कोरेही रह जायेंगे। इसलिये कोई-न कोई ढंग रचनाही चाहिये। न हो, तो एक दिनके लिये अयोध्या ही चला जाऊँ और इस विषयमें लक्ष्मणसे राय लूँ।"

परन्तु प्रतिदिन अयोध्या जानेकी बात सोचकर भी मुनि आश्रमसे न टल सके। दिनपर दिन बीतते चले गये। इसी बीच एक दिन अयोध्यासे एक राजदूतने आकर कहा, "मुनिराज! महाराज रामचन्द्र अश्वमेध-यज्ञ कर रहे हैं, अतएव उन्होंने बड़ी विनयके साथ आपको उपस्थित होनेके लिये निमन्त्रण दिया है; कृपाकर उनकी प्रार्थना स्वीकार करें।" मुनिने सहर्ष निमन्त्रण स्वीकार कर दूतको विदा किया और आपही आप कहने लगे,—"बस, अब मेरा काम बन गया। इसी बहाने मैं रामके सम्मुख उनकी आत्माके इन युगल प्रतिबिम्बोंको रखूँगा। देखा जायगा, कि वे कैसे अपने मनको वशमें रखते और माता-सहित अपने इन लालोंको अपने घरमें स्थान नहीं देते हैं?"

मुनिने कुटीके भीतर जाकर सीताको यह संवाद सुनाया। सुनकर सीता बड़ीही दुःखित हुईं। उन्होंने मनहीमन सोचा,—"अबतक तो मैं इसी बातको सोच-सोचकर सुखी होती थी, कि यद्यपि प्रजाके सन्तोषके लिये राजा-भावसे स्वामीने मुझे वनवासिनी बना दिया है, तथापि आदर्श स्वामीके भावसे उन्होंने अपने हृदयमें मुझे उसी तरह राजराजेश्वरी-रूपमें बिठला रखा है, जिस तरह मैं क्या अयोध्याके महलोंमें, क्या वनवासके कठिन दिवसोंमें, क्या दुःखमें, क्या सुखमें, सदैव देखती आयी हूँ; परन्तु हाय! अब वह सुख भी छिन गया, मालूम

होता है ; क्योंकि जब वे यज्ञ करने जा रहे हैं, तब उन्होंने दूसरा विवाह अवश्यही किया होगा!" यह कल्पना सहस्र जिह्वावाले सर्पकी नाईं सीताके हृदयको काट-काटकर व्यथित करने लगी।

इसी समय कहींसे लवकुश नाचते-कूदते हुए वहाँ आ पहुँचे और बोले, "माँ! कल हम दोनों महर्षिके साथ अयोध्या जायेंगे और जिनका चरित गा-गाकर हमलोग नित्य सुखी हुआ करते हैं, उन्हीं रामायणके नायक रामचन्द्रका अश्वमेध-यज्ञ आँखों देखेंगे। भला, माँ! ऐसा महापुरुष दुनियाँमें दूसरा कहाँ दिखाई पड़ेगा, जो प्रजाकी प्रसन्नताके लिये अपनी प्राणसमान पत्नीतकका परित्याग कर दे? माँ! सचमुच उनके सभी कार्य्य अलौकिक, महत्त्वसे भरे और आश्चर्य्यमें डालनेवाले हैं। हमलोगोंने उनके दूतसे पूछा था, कि जब रामचन्द्रने अपनी पत्नीको निकाल दिया है, तब इस यज्ञमें उनकी सहधर्म्मिणी कौन बनेगी? क्या उन्होंने फिर विवाह किया है? इसपर उसने कहा, 'नहीं। उनके गुरुजीने लाख कहा, पर वे विवाह करनेको प्रस्तुत न हुए। उन्होंने अपनी निर्वासिता महारानी सीताकी एक सोनेकी प्रतिमूर्त्ति बनवायी है, उसीको साथ लेकर वे यज्ञका कार्य्य पूरा करेंगे।' माँ! इसीसे विदित हो जाता है, कि अपनी पत्नीपर उनका कितना अपार स्नेह है और ऐसी प्यारी पत्नीको प्रजाके लिये छोड़कर उन्होंने कितना बड़ा त्याग किया है! माँ! आज्ञा दो, तो हमलोग उन महात्माके चरण-कमलोंके दर्शन कर आयें।"

सीताके मनसे सारा शोक, समस्त विकार, सकल सन्देह कपूरकी तरह उड़ गये! स्वामीका स्नेह वैसाही बना हुआ है—मेरे नामसे, मूर्त्तिसे, चिन्तासे वे अबतक पृथक् नहीं हुए हैं—यह विचारकर उनकी दहकती हुई छाती बहुत कुछ ठण्डी हुई। उन्होंने प्रसन्नमनसे पुत्रोंको यज्ञमें जानेकी अनुमति दे दी। उनके हृदयमें उस समय जो सौभाग्यका गर्व पैदा हुआ, आँखोंने कैसे आनन्दके आँसू गिराये, उसका अनुभव प्रत्येक सहृदय व्यक्ति कर सकता है। सीताने मन ही-मन देवताओंको प्रणाम कर कहा,—"अभागिनी सीता और कुछ नहीं चाहती। उसकी एकमात्र चाहना यही है, कि सभी सुहागिनें उसीकासा स्नेहमय स्वामी पायें, पर एकको भी उसकी तरह ऐसे नेह-सागरसे एक दिनके लिये भी बिछुड़नेका दुर्भाग्य न देखना पड़े।"

अयोध्यामें जैसी धूमधाम अश्वमेधके दिनोंमें देखी गयी, वैसी न कभी देखी गयी और न सुनी। निमन्त्रित राजा महाराजों अमीर-उमराओं, सैन्य-सामन्तों, नेही नातेदारों, बड़े-बूढ़ों, सखा-सहायकों, ब्राह्मण-पण्डितों और ऋषि-मुनियोंके मारे अयोध्या तो भरही गयी, नगरके बाहर भी नये-नये डेरे-तम्बुओंका तौंता लग गया और वस्त्रावासोंकी एक नयीही नगरी बस गयी। सब लोग एक मुँहसे कहने लगे, कि ऐसा यज्ञ आजतक किसी राजाने नहीं किया था।

इन्हीं डेरोंमेंसे एक मुनिवर वाल्मीकिको भी मिला था। वहाँ

वे अपने चेलोंसे नित्य वीनके सहारे रामायण गवाने लगे। उस सुन्दर स्वर-लहरीसे आसपासके सब लोगोंका मन मुग्ध होने लगा। हजारों आदमी उनके चेलोंका गाना सुननेके लिये उनके डेरेको घेरे रहने लगे। तब मुनिने उन बालकोंको घूम-घूमकर हर डेरेमें वह पवित्र सगीत सुधा बरसानेकी आज्ञा दे दी। सब लोग अचल भाव और अतुल आनन्दसे उस गानको सुनने और आँसुओंकी धारासे धरा सिक्त करने लगे। भला जिस सङ्गीतमें रामके अति विचित्र चरित्रका वर्णन था, जो आदि कवि वाल्मीकिकी सरस और सहज काव्यकलाका नमूना था, जिसके गानेवाले परले सिरेके सुन्दर और ऐसे सुरीले कण्ठ स्वरवाले थे, जिसके आगे कोयल भी मात थी, जिसके साथ वीनकी मधुर झङ्कार भी मिली हुई थी, वह सङ्गीत भला किसके कानोंमें अमृतकी वर्षा नहीं करता? कौन ऐसा नीरस हृदय था, जिसमें सहानुभूति और आनन्दके साथ साथ अनेक अलौकिक भाव नहीं पैदा होते?

होते होते यह सवाद रामके कानोंमें भी पहुँचा। उन्होंने उन बालकोंको बुलवा भेजा। आतेही उन्होंने बड़ी विनय और भक्तिके साथ 'महाराजकी जय' कहा और अपने लिये रखे हुए आसनोंपर बैठ गये। उनको एक बार सिरसे पाँवोंतक देखते-ही रामचन्द्रका मन, न जाने क्यों, चञ्चल हो उठा। उन्होंने देखा, कि इन दोनोंके शरीरके अगोंमें तो मेरे और जानकीके अगोंके सारे लक्षण विद्यमान हैं। यह विचार उत्पन्न होतेही उनके हृदय समुद्रमें भयानक ज्वार आने लगा। अपने हृदयके

इस उछलते हुए वेगको बड़े कष्टसे रोककर उन्होंने उन्हें गानेकी आज्ञा दी।

तुरतही सबके कानोंमें यह सुधा-समुद्र-लहरीकी भाँति अद्भुत सगीत-लहरी क्रीडा करने लगी। कविके अद्भुत काव्य कौशल और उन बालकोंकी निपुणताने एक-एकका मन मोह लिया। रामचन्द्र अपने शोकका वह प्रबल प्रवाह, जो उनके हृदयके भीतर जारी था, रोक रखनेमें असमर्थ हुए। अतएव उन्होंने गाना बन्द करवा दिया और पूछा, "प्यारे बच्चो! तुम लोगोंने यह गाना कहाँ सीखा?" इसके उत्तरमें उन्होंने कहा, "महाराज! महर्षि वाल्मीकि हमारे गुरु हैं। यह काव्य उन्हींका बनाया हुआ है और गाना बजाना भी हमने उन्हींसे सीखा है।" यह सुन रामचन्द्रके मनमें औरभी सन्देह तथा चिन्ता पैदा होने लगी। उन्होंने कहा, "अच्छा, आज तो तुम लोग जाओ, मैं फिर किसी दिन तुम्हें बुलवाऊँगा।"

उनके जाने बाद रामचन्द्र अपने एकान्त निवासमें आकर सोचने लगे—"न जाने क्यों, इन बालकोंको देखकर मेरे मनमें वैसेही भाव उठ रहे हैं, जैसे अपनी सन्तानको देखकर पिताके मनमें उठा करते हैं। कहीं ये सीताकेही बालक तो नहीं हैं? वे भी तो वाल्मीकिके आश्रममेंही छोड दी गयी थीं? परन्तु जिस बुरी तरह वे घरसे निकाल जगलमें छोड दी गयी हैं, उससे तो उनके जीती रहनेका विश्वास नहीं होता। इन बालकोंकी भौंओं, नासिकाओं, आँखों, कानों, ठोडियों, होठों और मोतीकेसे दाँतोंके ऊपर तो सीतादेवीकेही इन अवयवोंकी छाप पडी हुई मालूम होती है। परन्तु जिस निष्ठुरने एकदम निरपराधिनी होनेपर भी अपनी

पतिव्रता पत्नीको वनमें भिजवा दिया, उसकी यह आशा, दुराशाही नहीं, अनुचित भी है। हाय! न जाने वैसी साध्वी, पतिगत-प्राणा, सरलहृदया और शुद्धताकी साकार प्रतिमा मेरे जैसे कपटी, कुटिल और पाषाण-हृदयके पाले क्यों पड़ी? नहीं तो उस बेचारीका ऐसा हाल क्यों होता?"

यही सोचते-सोचते उनका हृदय व्याकुल होने लगा, आँखें बेरोक आँसू गिराने लगीं। थोड़ी देरतक चुप रह, एक लम्बी साँस ले, रामचन्द्र फिर आपही-आप कहने लगे, "हाँ, वे अवश्य क्षत्रिय-बालकही हैं। नहीं तो उनका उपनयन-संस्कार आठही वर्षकी उमरमें हो जाता। उनको देखनेसे मालूम होता था, कि उनका यह संस्कार अभी हालमेंही हुआ है। ऐसी अवस्थामें उनका सीताके पुत्र होना जितना सम्भव है, उतना दूसरेकी सन्तान होना सम्भव नहीं। नहीं तो दूसरा कौन ऐसा अभागा क्षत्रिय होगा, जिसके बालक मुझ भाग्यहीनके बालकोंकी नाईं वन-वन भटकते फिरेंगे? वे अवश्यही अभागे रामकीही सन्तान हैं।"

यही सब सोचते-विचारते और तरह-तरहकी कल्पनाएँ करते, उन्होंने सारी रात तारेही गिनते-गिनते बिता दी—"नींद ऐसी सो गयी, कि न आयी तमाम रात।"

दूसरे दिन भरे दरबारमें उन बालकोंकी संगीत निपुणताका चमत्कार देखनेके लिये रामचन्द्रने सर्वसाधारणको आनेकी आज्ञा दे दी। सुनतेही दलके दल दर्शक दरबारमें आने लगे।

जितने लोग यज्ञके लिये निमन्त्रित होकर आये थे, उनमेंसे तो कोई ऐसा न था, जो विना आये रहा हो। दरबार जैसाही सजा था, वैसाही जनसमूहसे भरा हुआ भी था। नियत समयपर राजा रामचन्द्र राजसिंहासनपर आ विराजे। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और लङ्काकी लड़ाईके सहायक, सुग्रीव, विभीषण आदि सभी लोग अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार सिंहासनके दाहिने-बायें बैठ गये। कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, ऊर्म्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्त्ति आदि राज-परिवारकी स्त्रियाँ अन्यान्य स्त्रियोंके साथ निश्चित स्थानोंमें आ बैठीं।

देखते-देखते लव और कुशको साथ लिये हुए वाल्मीकि भी आ पहुँचे। उनके आतेही बड़ा कोलाहल होने लगा। जो लोग उन बालकोंका गाना पहले सुन चुके थे, वे बड़ी प्रसन्नताके साथ उँगली द्वारा उनकी ओर इशारा करते हुए अपने पास बैठे हुए लोगोंको उनका परिचय देने लगे। मुनि और उन बालकोंके बैठतेही सारी सभामें सन्नाटा छा गया। सब लोग उत्सुकता-के साथ सगीत आरम्भ होनेकी बाट जोहने लगे।

वाल्मीकिके सिखलाये अनुसार राजाकी आज्ञा पातेही, वे दोनों बालक चुन-चुनकर उन्हीं अंशोंको गा-गाकर सुनाने लगे, जिनमें राम और सीताके पारस्परिक अलौकिक अनुराग और प्रेमका वर्णन था। सुनते-सुनते रामचन्द्रका हृदय गलकर पानी हो गया और उनकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। उनका यह विश्वास दृढ़ होने लगा, कि अवश्यही ये दोनों सीताकेही हृदयके टुकड़े हैं। रामने अपने शोकके वेगको रोक, धैर्य्य अवलम्बनकर,

लक्ष्मणसे कहा—"लक्ष्मण ! तुम इन्हें अभी एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ उपहार दो।"

सुनतेही लव-कुशने हाथ जोड़कर कहा,—"महाराज ! हम वनके रहनेवाले ये स्वर्णमुद्राएँ लेकर क्या करेंगे ? इनकी आवश्यकता तो उन्हें रहती है, जो भोग-विलास चाहते हैं। हमारा भोग-विलास तो पत्तोंकी कुटीमें रहना, पेड़ोंकी छाल पहनना और कन्द-मूल-फल खाकर जीवन-रक्षा करनाही है। गुरुने हमें बड़े परिश्रमसे यह कविता कण्ठस्थ करायी है। इसे आज आपके आगे सुनानेका अवसर मिला, यही हमारा यथेष्ट पुरस्कार है। आपको हमारा गाना पसन्द आया, इसीसे हम अपनेको कृतार्थ मानते हैं।"

बालकोंकी यह चतुरता और निर्लोभता देख सबको बड़ा अचम्भा हुआ। रामचन्द्रने मन-ही-मन उन्हें सौ-सौ बार सराहा।

इधर रामचन्द्रकी माता कौशल्याने जो उन बालकोंको देखा, तो उनमें राम और सीताके अंगोंकी परछाईं देख, वे बड़ी व्याकुल हो गयीं और "हाय सीता ! हाय जानकी !! मेरी प्राण-समान पुत्रवधू !!! तू कहाँ गयी ?" कहकर पृथ्वीमें गिर पड़ीं और गिरतेही मूर्च्छित हो गयीं। चैतन्य होतेही वे सिसक-सिसक कर रोने और कहने लगीं,—"भाइयो ! न जाने क्यों, मुझे ऐसा मालूम होता है, कि ये बालक हो न हो सीताकेही गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। मैं उनके प्रत्येक अंगमें अपने बेटे और बहूके लक्षण देख रही हूँ। सबको धोखा हो तो हो, पर माताकी आँखोंको कभी

धोया नहीं हो सकता। तुमलोग उन्हें मेरे पास ले आओ। मैं उनका मुँह चूमकर, उन्हें गोदमें लेकर, सीताका शोक भूलनेकी चेष्टा करूँगी।"

माताका यह रोना-पीटना देख रामचन्द्र रो पड़े, उनके भाई भी व्याकुल हो गये और सारी उपस्थित जनमण्डली शोककी मूर्त्ति बन गयी। लक्ष्मणने यह देख, गाना बन्द करा, सभा भग कर दी और उन बच्चोंको लिये हुए कौशल्याके पास चले आये। उनके पास आतेही कौशल्याने दौड़कर उन्हें कलेजेसे लगा लिया और "बेटी सीता! तुम कहाँ हो?" कह-कहकर बार-बार उनका मुँह चूमते हुए आँसुओंकी धारा बहाने लगीं। सुमित्रा और ऊर्म्मिला आदि जितनी स्त्रियाँ वहाँ बैठी थीं, वे सब यह हाल देख हाहाकार कर उठीं।

कुछ देर बाद सन्देह मिटानेके लिये कौशल्याने पूछा, "बच्चो! तुम्हारे माता-पिताका क्या नाम है? तुम दोनोंके नाम क्या हैं?"

बड़ी विनयके साथ अपने नाम बतलाते हुए, वे कहने लगे,— "माता! हमें नहीं मालूम, कि हमारे पिता कौन हैं, उनका नाम क्या है? आजतक न हमने यह बात किसीसे पूछी और न किसीने अपने आपही हमें बतलायी। हाँ, हमारे एक दुखिया माँ हैं। वे दिन-रात तपस्यामें लगी रहती हैं। हमने आजतक उनका नाम भी किसीसे नहीं सुना। ऋषिवर वाल्मीकिने हमें पाल पोसकर बड़ा किया और शिक्षा दी है, हम उन्हींके शिष्य हैं। हमारी माँ रात दिन ऐसी उदास रहती हैं, कि जीते-ही-जी

मरी हुईसी मालूम पड़ती हैं। उनका शरीर जिस प्रकार दिन-दिन छीजता जाता है, उससे मालूम होता है, कि वे अधिक दिन-तक न जियेंगी, आगे हमारे भाग्य!" इसके बाद कौशल्याके पूछनेपर उन्होंने अपनी माताके शरीरके डीलडौल और गढ़नका जो वर्णन किया, उससे किसीके मनमें यह सन्देह न रहा, कि वे सीताके बालक नहीं हैं।

तदनन्तर कौशल्याने वाल्मीकिको बुलाकर सारा हाल पूछा। उत्तरमें उन्होंने आदिसे अन्ततक सारी कथा कह सुनायी। "हाय! सती सीताके भाग्यमें ऐसा भोग बदा था!" यह कहकर सिर पीटते-पीटते कौशल्याने राम और वशिष्ठको वहाँ बुला भेजा। उनके आतेही उन्होंने जो कुछ वाल्मीकि-मुनि और उन बालकोंसे सुना था, वह कह सुनाया। सुनते-सुनते रामकी छाती आँसुओंसे भींग गयी। दाम्पत्य और वात्सल्य-प्रेमकी नदियोंका सङ्गम हो गया!

कौशल्याने उसी समय सीताको लिवा लानेके लिये वाल्मीकिके आश्रममें पालकी-कहार भेज दिये।

धीरे-धीरे यह संवाद सर्वत्र फैल गया, कि जो दो बालक आज कई दिनोंसे राम-चरित्र गा-गाकर सबका मन मोहे हुए हैं, वे महाराजकेही पुत्र हैं। वे महाराजके घरसे निकाल देनेपर उनकी महारानीके गर्भसे वनमें पैदा हुए थे। लोगोंने यह भी सुना, कि महारानीको बुला लानेके लिये पालकी-कहार भेज दिये गये हैं।

अधिकांश मनुष्य इस समाचारको सुन सुखी हुए; परन्तु पर-निन्दक, दूसरेकी बुराईसे प्रसन्न होनेवाले मनुष्य-रूपी पिशाच, कनक-कटोरेमें भरे हुए विष-रस, इतनी यातना पहुँचाकर भी सीतापर सदय न हुए। इस बार भी जहाँ-तहाँ कुटिल लोगोंके मुँहसे विष उगला जाने लगा! बातें रामचन्द्रके कानोंमें भी पहुँचीं। उन्होंने वाल्मीकि-मुनिको अपने पास बुलवाकर सारा हाल कह सुनाया।

सब बातें सुनकर वाल्मीकि बहुत दुःखी हुए और तरह-तरहकी शपथें खाकर सीताके शुद्धाचारिणी होनेका प्रमाण देने लगे। उनकी बातें सुन रामचन्द्रने कहा, "प्रभो! मेरा भी यही मत है, कि सीतासी सती संसारमें कम पैदा होती हैं। उनकी शुद्धता, पवित्रता, सदाचार और सतीत्वके विषयमें मुझे रत्ती-भर सन्देह नहीं है। केवल प्रजाको सन्तुष्ट करने और निरर्थक लोक-लज्जासे बचनेके लियेही मैंने उन्हें घरसे निकाला है। वही अड़चन आज भी आड़े आती है। अब आपही कहिये, कि मैं क्या करूँ? सीताको ग्रहण करनेके लिये तो मेरा रोम-रोम प्रस्तुत है। इस समय मैं इतना अधीर होरहा हूँ—उनके प्रति मैंने जो अन्याय किया है, उसकी आगसे ऐसा जल रहा हूँ, कि जीमें आता है, कि प्रजाकी कुछ भी परवा न कर, राजधर्मको तिलाञ्जलि दे दूँ और सीताके साथ फिर वनको चला जाऊँ।"

इस प्रकार बहुत देरतक बातें होनेके बाद यही निश्चय हुआ, कि सीताके आनेपर वाल्मीकि-मुनि उन्हें अपने साथ दरबारमें लायें और उनके पुनः ग्रहण किये जानेके विषयमें सबकी

राय पूछें। यदि लोग योंही सम्मति दे दें, तब तो कोई बातही नहीं है; नहीं तो सीताको विशेष प्रमाण देकर सबका सन्देह दूर करना होगा।

लाचार, मुनिने भी यह बात स्वीकार कर ली।

इधर मुनिके शिष्य, पालकी-कहारोंके साथ सीताके पास संवाद लेकर आ पहुँचे। उनके मुँहसे सारा हाल सुन, सीताका रोम रोम खिल उठा। सुख और आनन्दके निर्मल नीरमें नहाती हुई उनकी दुःख-सन्तप्त आत्मा शीतलता अनुभव करने लगी।

मन-ही-मन अनेक हवाई महल बनाती, मन-मोदक उड़ाती और अपार हर्ष अनुभव करती हुई सीता यथासमय अयोध्यामें मुनि वाल्मीकिके डेरेपर आ पहुँचीं। मुनि और अपने पुत्रोंके मुँहसे सारा हाल पूछ-पूछकर वे फूले अङ्ग न समायीं। बारह वर्षका क्लेश, दुःख, विरह, यातना, मनस्ताप सब एकही क्षणमें नष्ट हो गये! वे आनन्दसे अधीर होकर प्रातःकालकी बाट जोहने लगीं। सारी रात उनकी आँखें न लगीं।

रात बीती, प्रभात हुआ। यथासमय स्नानादिसे निश्चिन्त हो मुनिवर वाल्मीकि, सीता, लव और कुशको साथ लिये हुए सभामें आये। सीताकी वह हड्डी-भर बची हुई देह देख, रामके नेत्रोंमें आंसू आ गये। बड़ी कठिनाईसे उन्होंने अपने मनका वेग रोका। सीताकी दुरवस्थाने सबके हृदयको करुण-रससे सींच दिया—दयासे सबका अन्तःकरण भर उठा!

इसी समय वाल्मीकि,सीताको बैठनेके लिये कह, आप खड़े ही-खड़े—बिना आसन ग्रहण किये—कहने लगे,—'आज इस सभामें देश देशके राजा-राजकुमार,बड़े-बड़े भूमि-पाल और सहस्रों प्रजागण एकत्र हैं। मैं उन सबसे कहना चाहता हूँ, कि रामचन्द्रने बिना किसी अपराधकेही अपनी सहधर्म्मिणी सीताको जङ्गलमें छुड़वा दिया था। कुछ दुष्ट लोगोंके दुष्टता-भरे वचन सुन उन्होंने जो निष्ठुर कार्य्य किया है, उसका प्रायश्चित्त आज भी हो सकता है, यदि आपलोग एक मुँहसे उन्हें सीताको पुनः ग्रहण कर लेनेकी सम्मति दे दें, क्योंकि प्रजाकी प्रसन्नताके लियेही उन्होंने हृदयपर वज्र रखकर ऐसा काम किया है और बिना उसकी सम्मतिके वे उन्हें ग्रहण करनेको आज भी तैयार नहीं हैं। मैं शपथ पूर्व्वक कहता हूँ, कि सीता परम सती हैं। जो मनुष्य इनके सतीत्वपर शङ्का करे, वह नरकका अधिकारी होगा। यदि मेरे इस कथनमें तनिक भी असत्यता हो, तो मैं अपनी सारी तपस्याके फलोंको खो दूँ।"

वाल्मीकिकी यह बात सुन, बहुतोंने हर्षसे जय-जयकार करते हुए राय दे दी, परन्तु दुष्टोंकी एक टोली कुछ न बोली। यह देख, रामचन्द्रका मुँह कुम्हला गया। वे बड़ी निराशासे मुनिकी ओर देखने लगे।

दूसरा कोई उपाय न देख, वाल्मीकिने कहा,—"बेटी सीता! मैं देखता हूँ, कि तुम्हारे ऊपर प्रजा-पक्षके कुछ लोगोंका अबतक सन्देह बना हुआ है। मैं जानता हूँ, ये सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, पवन, पानी, पृथ्वी—सब जानते हैं, तुम्हारे स्वामी भी जानते हैं, तुम्हारे

देवरों और तुम्हारी सासुओंको भी मालूम है, कि तुम परम सती, बड़ीही शुद्धाचारिणी हो ; पर सारी प्रजा नहीं जानती, कि तुम किन लोक-दुर्लभ गुणोंका आधार हो। सभी मनुष्य समान नहीं होते ; सबकी आँखें हृदयकी तहतक नहीं पहुँचतीं ; अतएव पुत्री! तुम सबके सामने अपने सतीत्वका प्रत्यक्ष प्रमाण और पातिव्रत-धर्मकी परीक्षा दो।"

मुनिकी एक-एक बातने सीताके हृदयपर वज्रकासा काम किया। उनके रोम-रोममें आगकी चिनगारियाँ प्रवेश करने लगीं। उनका सारा आकाश-दुर्ग मिट्टीमें मिल गया, सुखकी आशा मिट गयी! जो सन्तोषकी निर्म्मल किरणें सवेरे सहस्र-सूर्य्य-रश्मिके समान उनके हृदयाकाशमें छिटकी थीं, वे मध्याह्न होनेके पहलेही घोर बादलोंकी ओटमें हो गयीं!

"हाय! अब भी प्रमाण!! फिर भी परीक्षा!!! बारह वर्षतक निरन्तर जलती रहनेपर भी क्या मेरा प्रायश्चित्त पूरा न हुआ? समझी! अब समझी, कि सीताका जन्म सुखकी कणामात्र भी भोगनेके लिये नहीं हुआ था! आज मेरी सारी आशाओंका अन्त है! जब इस जीवनमें स्वामीका वियोगही मेरे भाग्यमें लिखा है, तब मेरा जीनाही व्यर्थ है! माता वसुमती! यदि मैं निष्पापा हूँ, यदि मैंने भगवान् रामचन्द्रको छोड़ किसी औरका कभी नाम भी न स्मरण किया हो, यदि इस शरीरके रोम-रोममें रामका ही पवित्र नाम खुदा हुआ हो, यदि उनके चरणोंमें मेरी विमल प्रीति हो, तो तू *अभी फट जा, मैं तेरी गोदमें सदाके लिये सो जाऊँ।"*

इतना कहते-कहते सीता मूर्च्छित हो गिर पड़ीं। इसी

समय सबने चकित नेत्रोंसे देखा, कि पृथ्वी फट गया और एक सिंहासन प्रकट हुआ, जिसपर एक तेजोमयी देवी बैठी हुई हैं। प्रकट होतेही देवीने सीताको गोदमें ले लिया और देखते-देखते वह सिंहासन देवी तथा सीताको लिये-दिये पृथ्वीमें लीन हो गया!

सारी सभा हाहाकार कर उठी। रामचन्द्र सिंहासन छोड़ दौड़ पड़े और कहने लगे,—"देवि! यह क्या? क्यों सदाके लिये मुझे शोक-समुद्रमें डुबोकर चली जा रही हो? मैं राज्य नहीं चाहता, प्रजा नहीं चाहता, प्रजाकी प्रसन्नता भी नहीं चाहता। मैं केवल तुम्हें चाहता हूँ। तुम्हें लेकर मैं संसारमें दुखियाकी भाँति, दरिद्र वनवासीकी तरह, रहकर भी सुखी हूँगा।"

किन्तु हाय! उनके पास पहुँचनेके पहलेही वह सिंहासन पृथ्वीमें लुप्त हो चुका था! अब क्या हो सकता था?

अपनी माताको इस प्रकार पृथ्वीमें समाते देख, लव और कुश गौसे बिछुड़े हुए बछड़ोंकी तरह चीत्कार कर उठे। धर्मका यह प्रभाव, सतीका वह तेज, पातिव्रतकी वह परीक्षा देख सभी उपस्थित मनुष्य, "जय सती सीताकी जय! जननी जानकी

'बर्मन प्रेस' कलकत्ताकी सर्वोत्तम पुस्तकें।

ीर-रस-पूर्ण सचित्र ऐतिहासिक नाटक।

डबल जासूस

-: सचित्र जासूसी उपन्यास :-

इसमें नरेन्द्र और सुरेन्द्र नामक एक ही सूरत-शकलके दो नामी जासूसोंकी आश्चर्य्यजनक कारवाइयोंका वर्णन किया गया है, जिसके पढ़नेसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह उपन्यास घटनाका खजाना, कौतुकका आगार और जासूसी करामातोंका भण्डार है। दोनों जासूसोंने किस बहादुरीसे चोरों, दगाबाजों और खूनियोंको गिरफ्तार कर "सुशीला" और "मनोरमा" नामी दो सम्भ्रान्त रमणियोंको बचाया है, कि मुंहसे 'वाह वाह' निकल पड़ती है। कलकतिया चोरोंके तिलस्मी अड्डे का अद्भुत रहस्य, नाव पर जासूस और चोरोंका भयानक संग्राम, कम्पनीबागमें भीषण तमंचेबाजी, एक [illegible]

आदर्श चाची

शिक्षाप्रद सचित्र गार्हस्थ उपन्यास।

हिंदी संसारमें यह पहला ही उपन्यास छपा है, जिससे समाज या देशका वास्तविक उपकार हो सकता है। स्त्री पुरुष, बूढ़े, बच्चे सभी इस उपन्याससे मनोरञ्जनके साथ ही साथ आदर्श शिक्षा भी प्राप्त कर सकेंगे। प्राय देखा गया है, कि स्त्रियोंकी अनबनसे बड़े बड़े सुखी, समृद्धिशाली परिवार तहस नहस हो गये हैं, बाप बेटेसे छूट गया है भाई भाईमें विरसता हो गयी है, चाचा भतीजेमें वैर हो गया है और बना बनाया लाखका घर खाकमें मिल गया है। यह उपन्यास इसी प्रकारकी घटनाओंको सामने रखकर लिखा गया है। एकबार इस उपन्यासको पढ़ लेनेसे आपसके वैर भाव और दुराग्रह द्वेषका नाश हो जाता है। मूल्य केवल १) रेशमी जिल्द १।)

सच्चामित्र व ज़िन्देकी लाश।

यह उपन्यास बड़ाही रहस्यमय, अनूठा शिक्षाप्रद और हृदयग्राही है। इसमें एक सच्चेमित्रका अपूर्व स्वार्थ-त्याग, कुटिलोंकी कुटिलता, पातिव्रतकी महिमा और मुरदेका जी उठना आदि बड़ी अद्भुत घटनायें लिखी गयी हैं। दाम ॥=) आ०

जीवनमुक्त-रहस्य

शिक्षाप्रद सचित्र सामाजिक नाटक।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, राजनीति, धर्म्मनीति और समाज-नीतिसे भरा हुआ ईसाइयोंकी पोल खोलनेवाला, कुटिलों, बेईमानों और जालसाजोंका भय

है, अवश्य पढ़िये। दाम बिना जिल्द २। रु० रङ्गीन जिल्द बँधीका २॥ रुपया